सौरीसुधार ।

प्रथम प्रस्ताव, ऋतुकाल ।

सम्प्रति में हिसाब लगाने से वि॰ त हुआ है कि माता तथा नवप्रसूत बालक की मृत्यु अधिकतर प्रसूत अवस्था में होती है । इस विषय का ज्ञान व उसका प्रचार पश्चिमीयदेशों में आजकल बहुत है और वे इस से बहुत लाभ भी उठा रहे हैं । इस विषय के जानने वाले उनके यहां अनेक योग्य पुरुष तथा स्त्रियां है जो प्रसव के समय (साधारण) प्राकृतिक तथा मूढ़ गर्भ में प्रकृति की सहायता कर अनेक स्त्रियो व बच्चों को अकाल मृत्यु से बचाते है । इस कार्य की सफलता के लिये उनके यहां अनेक औषधालय तथा स्थान भी बने हैं । वहां गरीब स्त्रियां जो गृह पर वैद्य व दाई का व्यय नहीं सहन कर सकतीं उन औषधालयों मे जाकर लड़का लड़की जनती हैं । अनेक पाठशालायें भी इस विषय की शिक्षा देने के लिये बनी है, परन्तु हमारे यहां इस विषय का अत्यन्त अभाव है । दयालु सरकार का इस ओर अब ध्यान आकर्षित हुआ है, इस कार्य के लिये हम ॰ गों को लेडी डफरिन साहिबः को कोटिश धन्यवाद देना चाहिये, जिनके प्रयत्न से यहां भी अब बड़े २ नगरों मे स्त्रियो को इस विषय की शिक्षा देने का उपाय हो रहा है, और कहीं २ पाठशालायें भी स्थापित हो गई है । इन पाठशालाओं से कितनी दाईयां शिक्षा पाकर निकल चुकी हैं; परन्तु इनकी संख्या अभी बहुत न्यून है । जब तक प्रत्येक पुरुष व स्त्री को इस विषय

है तक यथेष्ट लाभ
जहां शिक्षित दाइयों
न व छोटी जाति की
को इस विषय का
न अभ्यास या अनुभव
तो इनसे लाभ होना
छेड़छाड़ करने से मृत
। बालक दोनों को
। में सैरी सुधार की

ढा) हैं। इन में मध्य

[illegible] रहता है। पहला गह्वर करोटी गह्वर (मस्तक गढ़ा) है इस में मस्तिष्क (सिर का भेजा) रहता है इस में ज्ञान व कर्म इन्द्रियों का केन्द्र है। दूसरा गह्वर पार्श्व गह्वर (पसलियों से बना हुआ छाती का गढ़ा) है इस में फुप्फुस और हृदय हैं। तीसरा गह्वर उदर गह्वर अर्थात् नाभि के नीचे का गढ़ा है। यह मांस पेशियों (पट्टी) और कमर की हड्डियों से बना है इस में पक्वाशय (पेट) अन्त्राशय (आंत) यकृत (कलेजा) प्लीहा (पिलही) वृक्क (गुर्दो) आदि अवयव हैं। ये अन्न जल को पचाकर रस रक्त आदि बनाने और उससे शरीर को पुष्ट कर फिर उन के अनुपयोगी भाग को मल मूत्र के रूप में बाहर निकालते हैं। उपरोक्त दोनों गढ़ों के बीच में एक चौड़ी मांस पेशी का फैलाव है जो नीचे की पसलियों और रीढ़ में लगी है इस से दोनों गढ़े अलग २ रहते हैं। चौथा गह्वर त्रिक गह्वर

(गर्भागार) है, यह पेड़ की तीन हड्डियों से बना है। इस के दो भाग किये हैं। इस का ऊपरी भाग खुला और उदर-गढ़ा में मिला है। परन्तु इन दोनों के बीच में कोई परदा विभाग करने के लिये नहीं है। केवल कल्पित कर लिया है। यह कमर की हड्डियों और सामने की माँस की पेशियों से बना है। इस का नीचे का भाग दूसरे भाग से मिला रहता है। ऊपर वाले को कल्पित (असत्य) गर्भागार और नीचे वाले को गर्भागार (सच्चा गर्भागार) कहते हैं गर्भागार का नीचे का हिस्सा मास पेशियों से बन्द है। इस में बाहर और सामने की ओर पुरुष मे लिङ्ग इन्द्री और स्त्री में पहिले मूत्रद्वार और उसके नीचे भग-द्वार है और सब से नीचे और पीछे की ओर दोनों जातियों में मलद्वार है। भगद्वार और मलद्वार के बीच के भाग को मूलाधार कहते हैं। इस गढ़ा में मूत्राशय और मलाशय है परन्तु स्त्रियों में इन के सिवाय दोनों के बीच में जरायु (गर्भाशय) और दो डिंब कोष (वीर्य-कोष व वीर्य स्थान) हैं। ये दोनों डिंब कोष दो डिंबनलों द्वारा जरायु से मिले रहते हैं। इस दोनों डिंब नलों से स्त्री का रज (वीर्य) डिंब कोष से उत्पन्न हो कर जरायु में आता है।

जरायु लट्टू के आकार का अवयव है। यह ढाई व तीन इंच लम्बा होता है। परन्तु गर्भावस्था में यह फैल कर बारह इंच लम्बा हो जाता है और फिर गर्भावस्था के बाद दो महीनों में अपने पूर्व रूप पर आजाता है। पर तौभी कन्याओं की अपेक्षा प्रसूतों में कुछ अधिक बड़ा रहता है। इस के ऊपर के चौड़े भाग मे दोनों ओर दो छेद होते हैं

जिनमें दो नल आकर खुलते हैं। इन्हें डिंब नल कहते हैं। इनका दूसरा सिरा डिंब कोष से मिला रहता है अतएव जब रज डिम्बकोष से उत्पन्न हो कर निकलता है तब इन्हीं डिंबनालियों द्वारा हो कर गर्भाशय में आता है। यहां पुरुष के वीर्य्य से मिलकर गर्भ स्थापित होता है। गर्भाशय का मुख नीचे रहता है और यह भग (योनि) से मिला रहता है जो कि बाहर की ओर आकर मूत्र-द्वार के नीचे खुलता है। जरायु त्रिकागार में रज्जुओं (बन्धनों) द्वारा बधा रहता है। इन रज्जुओं का एक सिरा जरायु में और दूसरा सिरा त्रिक गह्वर की हड्डियों में लगा रहता है इनके ढीले होने के कारण जरायु गर्भावस्था में फैल सकती है और दूसरे अवयवों के बोझ (गुरुता) के कारण अपने स्थान से टल जाती है, जिस से अनेक रोग होते है।

जरायु और डिम्ब-कोष अन्य इन्द्रियों के समान अपने २ कार्य में प्रवृत्त (अर्थात् मासिक धर्म और वीर्य्य का निकलना) १२ से १४ वर्ष की अवस्था मे होते है, और ४५, ५० वर्ष की अवस्था तक रहते हैं। किन्तु शीत देशो में इससे भी अधिक समय मासिक रज के निकलने और बन्द होने में लगता है। हमारे यहां बाल्यविवाह के कारण मन की प्रधानता विषयाभिलाषा में अधिक लगे रहने तथा संग व आचारण अथवा ननद भौजाई के आपस के बरताव से इन इन्द्रियो को अधिक उत्तेजना मिलती है। इस लिये इनके कार्य में भी अधिक शीघ्रता होती है। इसी कारण से आज कल की ९ वर्ष की लड़कियो के भी मासिक रज निकलने लगा है। परन्तु यह साधारण अवस्था मे कभी २

१५, १६ वर्ष तक नहीं निकलता है। यह मासिक रज व आर्तव जरायु से प्रति २८ वे दिन निकलता है और ३, ४ दिन तक बिना कष्ट वह कर आप से बन्द हो जाता है। रक्त आधपाव व तीन छटांक निकलता है। शुद्ध रुधिर लाख समान चमकदार होता है। परन्तु रज का कुछ रंग अधिक लाल कालिमा लिये रहता है इससे अधिक समय लगे अथवा अधिक रक्त का बहाव हो और बन्द न हो तथा निकलने मे कष्ट हो अथवा समय का ठीक २ पालन न हो तो रोग समझ कर उसको योग्य वैद्य से चिकित्सा कराना चाहिए। कोई २ स्त्रियों में वल के कारण भी रज प्रवाह के समय तथा तौल में न्यूनाधिक होता है इसलिये इस का भी विचार रखना चाहिए। जराय मे मासिक धर्म के स्थापित होते ही डिंब कोष में भी रज की प्रति मास उत्पत्ति होती है, जो कि नल द्वारा हो कर जरायु मे पहुंचती है और गर्भस्थिति न होने से उससे निकल जाती है। इसका बहाव (मासिक धर्म का) कई दिन तक रहता है। इसी डिम्ब कोष के पुष्ट रज आर्तव से मनुष्य के वीर्य का संगम होने से सन्तान होती है। अतएव इसका पुष्ट होना अत्यन्तावश्यक है। बहुत से साधारण मनुष्य समझते है कि मासिक धर्म के होने से ही बालिकाओं में सन्तान उत्पत्ति होना चाहिए, परन्तु यह बड़ी भूल है। जैसे नये वृक्ष में फूल लगते ही फल की कामना करना सर्वथा असम्भव है वैसे ही बालिकाओं में मासिक धर्म के होते ही सन्तान उत्पत्ति करना मूर्खता है। जैसे पहिले साल से वृक्ष फूल दे कर रह जाता है अथवा टिकोरा लगा तो मुरझा कर गिर पड़ता है वैसीही दशा स्त्रियों

की है। उन्हें मासिक धर्म होने के पश्चात् ५, ७ वर्ष तक सन्तान उत्पत्ति की चेष्टा नकरना चाहिये क्योंकि जब तक रज पुष्ट न होगा तब तक गर्भ नवीन वृक्ष के फल समान मुरझाकर गिर जायगा, अथवा हुआ तो कुछ काल के पश्चात मर जायगा अथवा बच्चा हुआ तो रोगी हो अधिक काल तक जी न सकेगा। अतएव स्त्रियों को १६ वर्ष के पूर्व गर्भाधान न करना चाहिये इस में अनेक बड़े विद्वान् डाक्टरों तथा हमारे पूज्य आर्य्य आचार्यों का मत है। प्रथम तो शुक्रार्तव का यद्यपि उत्पन्न होना आरम्भ हो जाता है परन्तु पुष्ट नहीं होता इस लिये वृक्ष के समान अयोग्य खेत मे वीर्य्य के पड़ने से ऊगता तो है, परन्तु उत्तम प्रकार से बढ़ता नहीं। द्वितीय इन्द्री व अवयव दृढ न होने के कारण उन पर गर्भावस्था में अधिक कार्य पड़ने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और उनके कारण अनेक स्त्रिया अकाल मृत्यु को प्राप्त होती हैं। तृतीय स्त्रियों के गर्भागार की हड्डिया पूर्ण रूप से विस्तृत नहीं होती है इस लिये गर्भागार का व्यास (Diameter) बालक के मस्तक के व्यास से छोटा रह जाता है और प्रसव कठिनता से होता है, अथवा नहीं भी होता है। इस से स्त्रियों को प्रसव वेदना का असह्य दुःख ही नहीं सहना पड़ता वरन योग्य प्रसव कर्ता न होने से बालक और स्त्री दोनों की मृत्यु होती है। उपरोक्त कारणों से ही हमारे परम पूज्य मनु महाराज तथा डाक्टरों ने १६ वर्ष की स्त्री का २४ वर्ष के पुरुष से गर्भाधान होना योग्य कहा है, यदि उपरोक्त रीत्यानुसार गर्भाधान हो तो हमारे यहां जो अनेक उपद्रव आज कल होते है न देखने मे आवे।

गर्भाधान मासिक धर्म के दो दिन पूर्व अथवा ७,८ दिन पश्चात होता है क्योंकि इस समय जरायु की बदली दशा होने से उसका मुख खुला रहता है, जिस से मनुष्य का वीर्य जरायु के खुले हुए मुख द्वारा भीतर जाकर स्त्री के रज से मिल सकता है। इस समय के पश्चात् उसका मुख रात्रि में कमल के फूल के समान सपुट बध जाने से बन्द हो जाता है तब रज और शुक्र आर्तव का संयोग होना असम्भव है, इस लिये सन्तानोत्पत्ति करने वाले स्त्री पुरुष को मासिक धर्म के दो दिन पूर्व अथवा आठ दिन पश्चात् संभोग करना उचित है मासिक धर्म के पूर्व का दिन मालूम नहीं होता इस लिये गर्भ अधिकतर पश्चात् ही रहता है। मासिक धर्म के समय स्त्री प्रसंग करना अनुचित है। जरायु की अवस्था में इस समय अदल बदल होने से उस में अधिक सूजन रहती है इस लिये संभोग करने से उसमें चोट लगने टल जाने व अन्यरोग होने का भय है। इस के सिवाय रज के निकल जाने से सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती वरन अति गर्म व खराब रुधिर के निकलने के कारण पुरुष को रोग हो सकता है।

मासिक धर्म कभी बिलकुल बन्द हो जाता है कभी थोड़ा २ निकलता, फिर बन्द हो जाता है कभी कष्ट सहित होता, कभी रक्त की धार कई दिनों तक बहती और कभी एक मास में दो तीन बार अथवा एक महीने में थोड़ा और दूसरे में अधिक निकलता है। इन के अनेक कारण हैं। मासिक धर्म का बन्द हो जाना ४५ वर्ष के ऊपर स्वाभाविक है; परन्तु बीच में गर्भ रहने से बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त मासिक धर्म के समय शीत लगने, दुर्बलता और

जीर्ण ज्वर के कारण भी कुछ समय के लिये मासिक धर्म बन्द हो जाता है। इस में गर्भावस्था का विचार कर औषधि करना उचित है। शीत से हो तो गर्म पानी मे बैठना अथवा उसे पिचकारी द्वारा योनि व गुदा में प्रवेश करना लाभदायक है ज्वर और क्षीणता के लिये ज्वर नाशक तथा पौष्टिक औषधियां और भोजन देना योग्य है।

थोड़ा रक्त निकलना अथवा कष्ट सहित होना, बहुधा दुर्बलता, जल्दी २ सन्तान के होने, अति मैथुन कराने और वायु (स्नायु) के कुपित होने से होता है इस में जरायु तथा डिम्ब कोष अधिक सूज जाता है इस की अवस्थानुसार योग्य वैद्य से चिकित्सा कराना चाहिये। कसीला हरा कौशीस और पीपर इन सब को पीस कपड़छान कर पुराने गुड़ के साथ गोली बना कर दोनेः समय गाय या बकरी के दूध के साथ पीवे। पीड़ा के लिये भंग तथा पोसता दाना पोटाश ब्रोमाइड वा एन्टीपाईरिन (Pot Bromide or antipyrin) का प्रयोग करते हैं। सदर को गर्म जल से कपड़ा भिगोकर सेकना भी लाभदायक है।

जिन स्त्रियो का बादी का स्वभाव है अथवा गर्भपात हुआ व कराया है तथा जरायु रोग (सूजन) है उन्हे मासिक धर्म व कुसमय में भी योनि से रुधिर अधिक निकलता है। इस अवस्था मे रुधिर को बन्द करने के लिये माजूफल चूर्ण पीस और कपड़छान कर आधे पैसे भर तीन २ घंटे में ठंढे जल से पान करे तो लाभ होता है अथवा एक्सट्रेक्ट् अर्गट लिक्वीड (extract argute liquid) तीस बून्द आधी छटाक पानी के साथ सेवन करे तो रुधिर शीघ्र बन्द हो जाता है

परन्तु योग्य वैद्यको अवश्य बोलावे नहीं तो उपद्रव अधिक बढ़जाने से प्राणान्त का भय है।

गर्भ के लिये प्रदर रोग भी हानिकारक है परन्तु योनि से थोड़ा सफेद और लसीला रस का निकलना योनि को तर और निरोग रखने के लिये स्वाभाविक है इस रस का योनि मे होना नाक व मुख से मल के निकलने के समानही आवश्यक है अधिक होने से गर्भ कम रहता है और गर्भ रह जाने पर उस के पात का भय है। इस के अनेक प्रकार है परन्तु सब श्वेत प्रदर से ही अवस्था विकार होने से उत्पन्न होते हैं। योनि व जरायु मे सूजन होना तथा उस सूजन का पुराना हो कर बना रहना व उसमे घाव पड़जाना, शीत लगना, अति मैथुन करना, योनि में तेज दवा का बार २ प्रयोग करना, गर्भपात व प्रसव के बाद शीघ्र उठना, बैठना, दुर्बलता इत्यादि कारण हैं। इस मे योनि मार्ग मे गाढा लसीला सफेद (चावल के धोवन व माड के समान) अथवा कई रग का रस निकलता है। अधिक निकलने से क्षीणता, कमर व सिर मे दर्द आलस्य व सुस्ती रहती है, बार २ कपड़ा बदलने तथा धोने से भग-द्वार मे जलन व सूजन होती है। इस के लिये अनेक प्रकार के धोवन तथा धातुपुष्ट औषधियों का सेवन लाभदायक है। साधारण में फिटकिरी, माजूफल, त्रिफला, पोस्तादाना, कौशीम, बबूर व महुआ आदि के छाल का काढ़ा बनाकर योनि का धोना अच्छा है। जरायु में घाव के कारण से प्रदर रोग हो तो उसे पारे (Hydrorg Perchlorid) अथवा (Lysol) लाइसोल औषधी का धोवन किसी औषधालय से मगाकर धोना चाहिये। हाथ से धोने की

अपेक्षा यन्त्रद्वारा धोना अधिक लाभदायक है क्योंकि बिना यन्त्र के औषधि जरायु तक नहीं पहुंचती है। इस कार्य के लिये पिचकारी की अपेक्षा धावन प्रवाहिक यंत्र (Douche) का उपयोग करना उत्तम है इस में एक दो गज लम्बी नली होती है। जिस के एक सिरे में काच का मुखबन्द ५, ६ इंच लम्बा रहता है इसे भगद्वार से जरायु के मुख तक जानेदेना चाहिये दूसरा सिरा एक स्वच्छ कलई किया (Enameled) टोटीदार लोहे वा अन्यधातु के पात्र के टोटी से लगा रहता है इस पात्र में दो सेर पानी समाना चाहिये। धोवन करने की विधि यह है कि यंत्र के प्रत्येक भाग को खौलते हुए जल मे पांच दस मिनट डालकर स्वच्छ करलेना चाहिये फिर इस पात्र में उपरोक्त स्वच्छ जल का धोवन छोड़कर किसी ऊंचे स्थान वा दिवाल मे खीला गाड़कर टांगदेना चाहिये, तब खाट पर लेट कर कमर को सिर से कुछ (आधा फुट) ऊंचा उठा रखना चाहिये, फिर नली के काचदार सिरे को योनि में डाल धीरे से जरायु मुख तक पहुंचाना चाहिये तब पानी यन्त्र से आप ही आप योनि मे जाता है और उसे धोता हुआ निकल आता है इस में कीटाणुनाशक स्वच्छता (Antiseptic or Aseptic) का विचार अधिक रखना चाहिये अर्थात् यन्त्र को खौलते हुये पानी से स्वच्छ करना तथा खौलाकर ठंढा पानी काम में लाना इत्यादि बातें आवश्यक हैं। गर्म जल का प्रयोग सूजन के लिये भी लाभदायक है साधारण उपाय करने पर प्रदर बन्द न हो तो उस को योग्य वैद्य से चिकित्सा कराना उचित है।

जरायु में सूजन, शीत लगने, प्रसव के बाद जल्दी उठने

बैठने, गर्भ पात करने के लिये औषधियों का उपयोग करने तथा मलिनता के कारण रोगोत्पादक कीटाणुओ के प्रवेश करने से, होता है । इसमें उदर और पेडू में पीड़ा होती और कभी २ रक्त योनि से निकलता है इस की यदि जल्दी दवा न की जाय तो पुराना हो जाने से जरायु में व्रण (घाव) हो जाता है और उस से पीव निकलने लगती है । प्रदर (रोग) का भी बहाव जारी हो जाता है, पेडू में खीचने की भी पीड़ा मालूम होती है, मासिक धर्म में बाधा पहुंचती है, यह कभी कम कभी अधिक होती है, शरीर दुर्बल होता जाता है, कमर में दर्द और अजीर्णता रहती है, इस अवस्था में स्त्री पुरुष को अलग २ सोना चाहिये । जरायु को जल प्रवाह पात्र से गर्म पानी में सोहागा अथवा बोरेसिक एसिड (Boracic Acid) व टिंचर आयोडिन (Tinct Iodine) (एक भाग दवा और बीस भाग पानी) डाल कर दिन में कई बार धोना उचित है, पेडू को ऊपर से गर्म जल से कपड़े को भिगाकर सेकना तथा गर्म जल में प्रात और सायङ्काल चार पाच दिन बैठना हितकारी है. मल त्याग के लिये त्रिफला तथा त्रिकुटा का चूर्ण काले नमक के साथ गर्म जल से खाना चाहिए योनि में गिलेसरिन (Glycerine) अथवा गिलेसरिन और टिंचर आयोडिन (सम भाग) का फोहा भिगाकर रखना लाभदायक है ।

जरायु का टल जाना तथा अन्यरोग बहुधा बहु-प्रसूता स्त्रियों में होते है । इसलिये इनका वर्णन गर्भके बादके रोगों में किया जायगा ।

कितनी स्त्रिया संसार मे ऐसी है जिन्हें कभी गर्भ नहीं

रहा और कोई २ ऐसी भी है जिन्हें एक सन्तान हो कर फिर दुवारा गर्भ नहीं हुआ ऐसी स्त्रियों को बालबध्या (जन्म-बन्ध्या) और काक-बन्ध्या कहते हैं। स्वभावत. स्त्रिया बन्ध्या नहीं हैं, और बन्ध्या होने में केवल इन्हीं में दोष नहीं है वरन स्त्री पुरुष दोनों में है किन्तु कभी २ केवल पुरुष के ही दोष से स्त्री बन्ध्या रहती है। इसके अनेक कारण हैं, परन्तु उनके दो मुख्य विभाग हैं। एक इन्द्री दोष दूसरा आचरण दोष।

इन्द्री दोषः—कोई २ स्त्रिया ऐसी भी देखने में आई हैं जिनके जरायु अथवा डिम्बकोष नहीं होता परन्तु और सब बनावट स्त्रियों कीसी रहती है इस से सन्तानोत्पत्ति होना असम्भव है। किन्ही २ स्त्रियों की योनि सकुचित अथवा टेढ़ी होने से अथवा पुरुष का लिङ्ग छोटा व स्थूल होने से संयोग ठीक २ नहीं होता इस लिये आर्त्तव और वीर्य्य का मेल न होने से गर्भ नहीं रहता। किसी २ स्त्री-पुरुष के वीर्य्य में वशज दोष होने से उनके वीर्य्य में विपरीत गुण स्वभाव होता है इस हेतु दोनो के वीर्य्य का मेल नहीं होता; जैसे दूध में खटाई का मेल होने से फट जाता है वैसे ही ये भी आपस में मिलकर नष्ट होजाते हैं, अथवा तेल और पानी के समान मिलते है नहीं। इस लिये प्रसग होने पर भी गर्भ नहीं रहता। इसको योग्य वैद्य से चिकित्सा कराना चाहिये तब सन्तान उत्पन्न हो सकती है।

प्रदर जरायु में सूजन तथा उससे रक्त का निकलना इत्यादि रोगों से भी गर्भ कम रहता है। अतिस्थूल शरीर वाले स्त्री पुरुष से भी गर्भ स्थापित नहीं होता यद्यपि उन

में इन्द्रिय दोष कुछ नहीं है परन्तु समागम ठीक २ नहीं होता।

आचरण दोषः—अति मैथुन भी करना व करवाना बन्ध्या का कारण है। यह बहुधा वेश्याओं में देखा जाता है। इस से वीर्य्य पतला हो जाता है और शक्ति क्षीण होने के कारण गर्भ नहीं रहता। इस लिये एक मास में चार बार से अधिक मैथुन न करना चाहिये। यदि ऐसा हो तो साल दो साल तक ब्रह्मचर्य्य से रहना सन्तानोत्पत्ति करने वाले को उचित है। अवस्था भी कुछ काल के लिये बन्ध्या का कारण है। अति बाल्यावस्था अथवा वृद्धावस्था मे सन्तान का होना सम्भव नहीं। अनुभव से देखा गया है कि सन्तान की उत्पत्ति अधिकतर २० से ३५ वर्ष की उमर तक अधिक होती है इस के पूर्व और पीछे कम होती है इस लिये बाल्य व वृद्ध विवाह से हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ नहीं किन्तु बाल विवाह भी बन्ध्या होने का आज कल एक प्रधान कारण है क्योंकि बालकपन में ही (स्त्री १४ और पुरुष २२ वर्ष के नीचे) वीर्य्य के नष्ट हो जाने से शरीर की शक्ति व वीर्य्य पतला पड़ जाता है। अतएव उत्तम सन्तानोत्पत्ति के लिये १६ और २४ वर्ष की अवस्था ही उत्तम हैं। बहुत सी स्त्री योनि में वस्त्र तथा अन्य कोमल पदार्थों के रगड़ने से और पुरुष हस्त मैथुन तथा बिछौने आदि में उपस्थेन्द्री के रगड़ने से काम को उत्तेजित कर वीर्य्य पात करते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन तथा दूसरे चौथे दिन वीर्य्य पात करने से उन्हें इसका अभ्यास पड़जाता है फिर जब तक उनका विवाह नहीं होता तब तक यह नहीं छूटता और किसी २ से तो विवाह के पश्चात भी यह स्वभाव देखने मे आया है।

ऐसे स्त्री पुरुषों के भी सन्तानोत्पत्ति कम होती है।

दुर्बलता, अधिक मानसिक परिश्रम, अति मद्यपान करना आदि भी बन्ध्या होने के कारण हैं। यदि उपरोक्त सब दोषों का विचार कर बिवाह तथा चिकित्सा की जाय तो कह सकते हैं कि बन्ध्या होना नपुंसकों को छोड़ स्त्री पुरुषों में स्वाभाविक नहीं है वरन उचित उपायों से दूर हो सकता है। परन्तु जहां जोड़ा अयोग्य है वहां बिवाह के बंधन को तोड़ना असम्भव है; इस लिये वहां चिकित्सा भी कभी २ निष्फल होती है। लड़कियों तथा स्त्रियों को लड़कों और पुरुषों के समान प्रत्येक अवयव दृढ़ बनाने के लिये व्यायाम (कसरत) करना उचित है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्हें पहलवान बनाना चाहिये क्योंकि पहलवान बनाना भी प्रसव के लिये हानिकारक है। गर्भागार की हड्डियां सन्धि और पेशियां दृढ़ हो जाने से प्रसव कठिनता से होता है परन्तु उनके उदर व पेड़ू की पेशियों का दृढ़ होना गर्भावस्था और प्रसव के लिये लाभदायक है। पेशियों के ढीले रहने से उदर तथा त्रिकागार के अवयवों पर गर्भावस्था में दबाव पड़ने से उदर के अधिक निकलने तथा अवयवों के टल जाने व उन पर दबाव पड़ने से अनेक उपद्रव होते हैं। इस विषय (व्यायाम) में हमारे यहां की स्त्रियों का बड़ा अभाग्य है। गरीबों के घर की लड़कियां व स्त्रियां बाहर भीतर चल फिर काम काज पीसना कूटना इत्यादि कर अपने अवयवों को पुष्ट करलेती हैं। परन्तु बड़े घरों की लड़कियां तो छुटपन (७, ८ वर्ष) से ही घर से बाहर निकलना अथवा घर में कोई कार्य करना मानमर्यादा में बट्टा लगाना समझती हैं

यदि कोई काम किया भी तो नौकर टहलनी ने (डर के मारे) सहायता कर दी (जिसमें उस की खबर न ली जाय)। परन्तु सभ्य जातियों में लड़कियां बाहर हवा खाने के लिये टहलाने अथवा घोड़ा गाड़ी पर सवार हो कर आने के अतिरिक्त लड़कों के समान कसरत भी करती हैं। इस से इनका शरीर आरोग्य और बलवान् रहता है। यद्यपि हमारे यहां यह होना अभी सम्भव नहीं, परन्तु मामूली घर का काम करने तथा साधारण थोड़ा सा बैठक करना व कमर को आगे पीछे कुछ समय तक झुकाना व कमान के सदृश होना अथवा दहिने-बायें शरीर को मरोड़ना व सास रोकना और फिर धीरे २ छोड़ना इत्यादि कसरत का स्वच्छ सायेदार मकान व दालान में अभ्यास करना लाभदायक होगा।

द्वितीय प्रस्ताव–गर्भावस्था।

स्त्रियों को बाल्यावस्था से युवावस्था प्राप्त होते ही अनेक प्रकार की जिम्मेदारियां उठानी पड़ती है। फिर "जननी" कहलाने के लिये उन पर कितना महत्त्व का कर्तव्य आ पड़ता है। यह एक साधारण बात नहीं है। घर का काम करना, सास, ससुर, पति आदि से प्रेमपूर्वक व्यवहार करना उनका स्वास्थ ठीक रखना फिर विधिपूर्वक आरोग्य तथा हृष्ट पुष्ट सन्तान उत्पन्न कर उनका पालन पोषण करना तथा उन्हे संसार में योग्य बनाना इत्यादि जननी का ही कर्तव्य हैं। क्या हमारे यहां की लड़कियां इस कर्तव्य को समझती हैं जब उनका विवाह अथवा गौना होता है? कदापि नहीं। अवयव तक तो उनके पुष्ट नहीं

होते फिर कर्तव्य का विचारा विचार करने के लिये ज्ञान शक्ति का प्रसार होना असम्भव ही है। बालविवाह के ही कारण अनेक दोष सन्तानो में आज देखने में आते है। दुर्बलता, अल्पायु, मूर्खता इत्यादि दोष बाल्यविवाह तथा स्त्रियो की गर्भाधान नियम सम्बन्धी अज्ञानता के कारण होते हैं। किसी पाश्चात्य विद्वान का वचन है, A nation rises no higher than its mother अर्थात् "मातृसीमा से अधिक किसी जाति की उन्नति नहीं हो सकती" अथवा जाति की उन्नति होना मा के ऊपर निर्भर है। अतएव हमारे यहां जो माता पिता अपने छोटे २ लड़के लड़कियों का विवाह कर नाती खेलाने का हौसला रखते हैं, तथा इसे वे अपना कर्तव्य समझते है, वे भूल ही नहीं करते वरन अपने वंश की अवनति करते है। जब तक लड़के लड़कियो को स्वावलम्बन तथा सन्तानोत्पत्ति के भार को अच्छी तरह समझने तथा कार्य साधने की शक्ति पूर्ण न हो जाय तब तक उनका इस कार्यमे प्रवृत्त होना योग्य नहीं।

सन्तानोत्पत्ति के लिये हृष्ट पुष्ट आरोग्य होना अत्यावश्यक है। उपदंश (गर्मी) रोग वाले स्त्री पुरुष को सतान उत्पन्न न करना चाहिये, क्योंकि इसका असर सन्तान पर भी पड़ता है, इसलिये वह सन्तान अच्छी तरह आरोग्य कभी नहीं रह सकती। उत्तम वीर्य अयोग्य खेत में पड़ने से क्षीण हो जाता है, एवम् जीर्ण वीर्य भी उत्तम खेत व खाद द्वारा पुष्ट हो सकता है, हमारे पूर्वज इच्छानुसार रूपवान्, बलवान् और प्रतापी सन्तान उत्पन्न करते थे। महाभारत के प्रतापी अभिमन्यु बालक हमारे आदर्श हैं, जो गर्भ से ही उत्तम

पोषण और शिक्षा द्वारा बाल्यावस्था में ही अलौकिक पराक्रम से अभेद्य दुर्ग के कई अङ्ग अपनी बुद्धि द्वारा तोड़-कर सदैव के लिये अमर हो गये हैं। इसी प्रकार अनेक उदाहरण हमारे पुराणों में इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति के पाये जाते हैं। परन्तु इस हेतु कितना आचार विचार, आहार विहार आदि के ऋतु अनुकूल नियम पालन करना पड़ते हैं, वही जानते और करते थे। आज हम लोग उनकी सन्तान कहलाने वाले आलस्य के कारण अविद्यारूपी अंधकार में पड़ वीर्य्य और पराक्रम हीन होकर दुर्बल और रोग ग्रसित हो रहे हैं। और जो जानकार और योग्य हैं वे विषयाभिलाष में जकड़े पड़े हैं। उन्हें हाथ पाँव हिलाना भी महाकठिन हो गया है। परन्तु, यदि अपनी तथा सन्तान अथवा जाति की उन्नति करने की इच्छा हो, तो उपरोक्त नियमों से बच ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य की रक्षा कर नियमानुकूल गर्भाधान करने का प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम सन्तान की इच्छा करने वाले स्त्री-पुरुष को योग्य समय आने पर कुछ काल तक ब्रह्मचर्य्य में रह कर वीर्य्य को पुष्ट करना चहिये, फिर प्रसन्नता पूर्वक आनन्दचित हो सब प्रकार से शृंगार कर अर्ध-रात्रि के उपरान्त (भोजन के तत्काल ही नहीं) दोनों को गर्भस्थापित करना चाहिए। इस समय किसी प्रकार का मन में रोष व ग्लानि न होना चाहिये। स्त्रियों को उत्तम शुद्ध विचार तथा योग्य पुरुषों के गुणों का ध्यान करना चाहिये। यद्यपि पुष्ट वीर्य्य ही उत्तम सन्तान के लिये मुख्य है, परन्तु समय व अन्य अवस्था प्रतिकूल होने से बीज जैसा जल्दी और उत्तम उपजता है वैसे ही वीर्य्य की भी अवस्था जानना

चाहिये। पश्चिमीय विद्वानों का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे इच्छानुकूल सन्तान उत्पन्न करने का उपाय कर रहे हैं। हमारे कोई २ आचार्यों का मत है कि गर्भ रह जाने पर गर्भवती की जो इच्छा हो उसे अवश्य पूरी करना चाहिये, नहीं तो उसकी इच्छानुसार उस बालक का वही अङ्ग दूषित हो जाता है। जैसे किसी पदार्थ के देखनेको जी चाहा और यदि वह न मिला तो बालक अंधा हो जाता है। यह सर्वथा अत्युक्ति है। किसी आश्चर्यजनक पदार्थ को देख कर आनन्दित हो जाने अथवा डर जाने (कम्पायमान शरीर हो जाने) से तदनुसार गर्भ में असर अवश्य होता है और उसी हिसाब से बालक पर भी असर पड़ता है। उसका जो अङ्ग उस समय बनता है उसमें बाधा पहुंच कर उस अङ्ग का भङ्ग होना सम्भव है, परन्तु साधारण असर से लगड़ा, लूला, अंधा, काना, गूंगा इत्यादि होना अतिशयोक्ति है। इसलिये स्त्रियों को गर्भावस्था में ऐसा दृश्य व समाचार न देखना व सुनना चाहिये जिस से अत्यन्त हर्ष अथवा दुख हो।

स्त्री पुरुष के वीर्य मिलने पर ही गर्भस्थिति होती है, यह मेल बहुधा जरायु के ऊपरी भाग में, जहां डिम्ब नलियों के लिये छिद्र हैं, होता है, और वहीं अथवा उससे किसी उत्तम स्थान से खसक कर गर्भ स्थापित होता है। पहिले एक दो दिन तक इसका पोषण आर्तव (स्त्री के वीर्य) से होता है। फिर जब वह जरायु से मिल जाता है तब उसका पोषण जरायु की नाड़ी के द्वारा दो महीने तक होता है। इस समय में जरायु और बालक की ऊपरी झिल्ली से परिवर्तन होकर **आमर-बेवर,** (Placenta) (umbilical cord) और नाल

बनते हैं, आमर बेग्रर जरायु में लगा रहता है और उस में मा की नाड़ियां मोटी होकर अन्त होती हैं, और फिर ये नाड़िया बालक से मिली रहती हैं, ज्यों २ बालक बढ़ता है त्यों २ यह नाल अर्थात् नाड़िया भी बढ़ती हैं और अन्त में २० इंच लम्बी हो जाती हैं, तब बालक का पोषण इसी नाल द्वारा मा के रुधिर से होता है। इसी लिये बालक का हृष्ट पुष्ट होना मा के आहार पर निर्भर है, बालक जरायु में स्वतन्त्र झिल्ली के अन्दर केवल नाल द्वारा मां से मिला रहता है, इस दृढ़ झिल्ली के भीतर (अर्थात् थैली में) पानी भरा रहता है जिसमें बालक गति कर सकता है। इस पानी को बालक का सूत्र कहते हैं।

बालक का आकार पहिले एक दाग (धब्बा) के समान होता है, यह धीरे २ बढ़कर दूसरे महीने मे करीब एक इंच के हो जाता है, चौथे महीने मे जब वह फड़कने लगता है तब उसकी लम्बाई ५½ इंच और तौल सवा पाव का होता है, इस समय उसके ज्ञानेन्द्रिया और सब अङ्ग प्रत्यङ्ग बन जाते हैं, इसलिये उससे स्त्री पुरुष का भेद मालूम होसकता है, परन्तु हड्डी नर्म और अलग २ होती है और मस्तिष्क का प्रसार आरम्भ होता है, सातवें महीने में सब अङ्ग पूर्ण हो जाते हैं और बालक उत्पन्न होने पर जी सकता है, परन्तु इस के पूर्व उत्पन्न होने से जीना असम्भव है, नवें महीने सर्वाङ्ग दृढ़ हो जाता है, तब बालक की लम्बाई १८ से २१ इंच और तौल ३½ सेर होता है। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि चार महीने तक बालक के अङ्ग और प्रत्यङ्ग बनते हैं, इस लिये इस समय में मा को किसी प्रकार का दुःख होने से

बालक के अङ्गों में विकार उत्पन्न हो सकता है, चार महीने के पश्चात् बालक के मस्तिष्क का फैलाव होता है, इसलिये इन दिनो गर्भवती को उत्तम विचार तथा उत्तम पुरुष के गुणों को स्मरण करना चाहिये, इससे बालक बुद्धिमान् और तेजस्वी होता है ।

किसी २ का विचार है कि गर्भ में जीव चौथे महीने में पड़ता है, अर्थात् जब वह फड़कने लगता है, परन्तु यह विचार भूल का है, जीव का पड़ना व प्रत्यङ्गो का होना गर्भ में प्रारम्भ से ही होता है अर्थात् जीव तो वीर्य्य व रज के क्रिमि में ही रहता है परन्तु अवस्था इतनी सूक्ष्म है कि दृष्टिगोचर होना असम्भव है, क्योंकि, यदि उसमें जीव न होता तो उसका पोषण और विस्तार (बढ़ना) असम्भव होता और जब जीव उससे निकल जाता है तब उसका पात हो जाता है, बढ़ना नहीं ।

बहुतो का यह भी सिद्धान्त है कि आठ महीने का बालक नहीं जीता और सात महीने का जीता है, यह भी निर्मूल है, क्योंकि अष्टममास के बालक के अधिक पुष्ट होने से उसके जीनेकी सम्भावना सप्तममास के बालक की अपेक्षा अधिक है और ऐसा अनुभव से देखा भी गया है ।

लड़के लड़की का उत्पन्न होना, कोई सम व विषम दिन में गर्भाधान होने से मानते हैं । और कोई मनुष्य के शक्ति पर मानते हैं, और कहते हैं कि पुरुष व स्त्री से जो बलहीन होगा उसी के अनुकूल सन्तान होगी । अर्थात् स्त्री बलहीन हुई तो लड़की और पुरुष बलहीन हुआ तो लड़का उत्पन्न होगा । परन्तु हमारे यहां बाल विवाह के कारण इसके विपरीत देखने मे आया है, जिन २ जातियो मे बाल्य

विवाह होता है और लड़के लड़की छुटपन में (५ वर्ष के नीचे) विवाह दिये जाते हैं तो लड़का छोटा रह जाता है और लड़की अधिक बड़ी और बलवती हो जाती है। उन में बहुधा स्त्री के बलवती होने के कारण पहिली दूसरी सन्तान बहुत कर लड़की ही देखने में आती है और फिर लड़का। एवम् जहां लड़की बड़ी और लड़का छोटा विवाहा जाता है वहां भी ऐसा ही देखा जाता है, परन्तु जहां पुरुष बलवान है, अथवा लड़का बड़ा और स्त्री छोटी ब्याही जाती हैं वहां पहिले लड़के ही लड़के देखने में आते हैं। और यह हमारे पूर्व आचार्यों के मति के अनुकूल है।

गर्भ का ठीक २ निश्चय करना गर्भवती स्त्रियों के लिये अति लाभदायक है, जिस से वे अपने होनहार सन्तान के लिये सचेत हो उसका पालन पोषण गर्भावस्था से ही अच्छी तरह करें। क्योंकि ऐसे भी रोग हैं जिन में गर्भ का मिथ्याभास (भ्रम) होता है, और एक सती स्त्री के माथे कलङ्क का टीका लगजाने का भय है। ऐसा भ्रम बहुधा जरायु, डिम्बकोष और मूत्राशय से ग्रंथि रोग उत्पन्न होने से होता है। किसी २ स्त्रीको प्रबल इच्छाके कारण मानसिक मिथ्या कल्पना होने से मिथ्या गर्भ (False pregnancy) होता है। इस से गर्भावस्था के बहुत से लक्षण पाये जाते हैं, परन्तु वास्तव में गर्भ (बालक) नहीं रहता। ऐसी स्त्रियों को औषधिद्वारा (क्लोरोफार्म से) अचेत करनेसे गर्भधारण के सब लक्षण विलीन हो जाते हैं और इसी अवस्था में गर्भाशय की परीक्षा करने से वह खाली (बालक रहित) पाया जाता है। एवम् सूक्ष्म रीति से परीक्षा करने पर अन्यरोग

भी पहिचाने जा सकते हैं। परन्तु इसमें योग्य वैद्य की सहायता आवश्यक है।

गर्भ में अनेक लक्षण पाये जाते हैं उनमें से मुख्य २ महीनों के अनुसार वर्णन किये जाते है।

मासिक धर्म (आर्त्तव) का बंद होना। जब मासिक धर्म महीने २ होता जाता है तब इस के बंद हो जाने से गर्भ का संदेह होता है। परन्तु जिन स्त्रियों को दो २ या तीन २ महीने में मासिक धर्म होता है उनके लिये इसके बंद हो जाने से उतना संदेह नहीं होता। कभी २ यह अन्य कारणो (शीत दुर्बलता इत्यादि) से भी बंद हो जाता है। और कभी २ गर्भावस्था में भी २ या ३ महीने तक होता जाता है, तथापि इसके बंद हो जाने से गर्भ का संदेह अवश्य होता है। किसी २ बहु प्रसूता स्त्री को प्रसव के दो तीन महीने पश्चात् ही बिना ऋतुवती हुए भी गर्भ रह जाता है। जी मचलाना और वमन होना यह बहुधा दूसरे महीने से प्रारम्भ होता है, और दो तीन महीने तक रहता है। कभी तो इतना अधिक हो जाता है कि पेट में अन्न ठहरना कठिन होता है और जब तक गर्भपात न हो जाय तब तक बन्द नहीं होता। यह बहुधा प्रातःकाल व भोजन के देखते ही होने लगता है और सन्ध्या समय कम हो जाता है।

स्तनों का बढ़ना—स्तन दूसरे, तीसरे महीने सेही बढ़ने लगते हैं। भुंडी (घुँडी) काली हो जाती हैं, और उनको दबाने से अन्तिम मास में दूध निकलने लगता है। शिरायें अधिक उभरी हुई दिखाई देती हैं। किसी २ में ये लक्षण नहीं भी पाये जाते विशेष कर बहु प्रसूताओं मे।

अभक्ष्य पदार्थों के खाने की इच्छा होना—कोई २ खरिया या चूल्हे की मिट्टी, कोयला घड़ा व खपड़े के टुकड़े या किसी अन्य विशेष पदार्थ के खाने की इच्छा करती हैं, परन्तु इनका खाना हानिकारक है।

स्पंदन फड़कन—जिस प्रकार पक्षी पकड़ने से फड़कता है उसी प्रकार पेट में बालक का उछलना माता को मालूम होता है। यही गर्भ का मुख्य लक्षण है। जब यह गति दूसरी स्त्रियों अथवा दाई या वैद्य को मालूम पड़े तो गर्भ का होना निश्चय समझना चाहिये। क्योंकि इच्छुक माता को गर्भ की स्थिति का भ्रम सदैव रहा करता है। यह चौथे महीने में मालूम होता है। ऐसा भ्रम पेट में वायु के कारण भी होसकता है।

बालक के हृदय की धड़क-यह घड़ी के समान टिक २ का शब्द बालक के हृदय पेशियों के संकोचन से होता है; जैसे कि प्रत्येक मनुष्य में वक्षस्थल (छाती) के पास सुनाई देता है। इसके सुनाई पड़ने से बालक का गर्भाशय में होना निश्चय किया जाता है। यह बहुधा माता के बायें कोख के बीच में सुन पड़ता है। इसकी संख्या एक मिनट में १६० तक होती है। इसमें न्यूनाधिक होना बालक के आकार पर निर्भर है। यह कन्या की अवस्था में अधिक और पुत्र में कम होता है, क्योंकि कन्या का आकार पुत्र से सदैव बड़ा होता है, जब यह अधिक और शीघ्रता के साथ सुनाई पड़े तब समझना चाहिये कि बालक पर कोई संकट पड़ा है। और जब यह साधारण सुनाई दे और फिर शीघ्रता के साथ सुनाई देकर बन्द होजाय तो समझना चाहिये कि बालक की मृत्यु होगई। यह गर्भ का निश्चय बोधक लक्षण है। पर इसका

निश्चय करना वैद्य के अतिरिक्त साधारण स्त्रियों से कम सम्भव है। इसे यन्त्रके बिना भी बाये कोख में कान लगाकर सुन सकते हैं।

पेट का बढ़ना—यह तीसरे महीने के पश्चात् बढ़ने लगता है। तीन महीने तक बालक वस्त्यागार (पेडू) में रहता है तत्पश्चात् उदर में आता है। छठवें महीने नाभि तक और आठवे महीने हृदय के नीचे (छाती द्वार तक) पहुंचता है, बालक के बढ़ने से पेट भी बढ़ने लगता है। पेशी व नसें तन जाती हैं और ऊपरी शिरायें उभरी हुई दिखती है। पेट का बढ़ना मिथ्यागर्भ जरायु और डिंबकोष के ग्रन्थि और जलधर रोगों में भी होता है।

योनि का सकोचन होना व बढ़ना—उदर पर हाथ रखने से जरायु हाथ के नीचे संकुचित व स्फुरित होती हुई मालूम पड़ती है। इसका बढ़ना बालक के आकार पर होता है, ज्यों २ बालक की वृद्धि होती है त्यों २ यह फैलती जाती है इससे भी गर्भ का निश्चय होता है, परन्तु यह ग्रंथि रोगो का भी संदेह दिलाता है।

(योनि) प्रदर की कोमलता तथा उसका मखमल के समान (सुर्ख) रंग का दृष्टि पड़ना भी गर्भ का एक लक्षण है। यह तीसरे मास के पश्चात् दिखाई देता है। स्त्री को खड़ा कर योनि मुख में दो उङ्गलियों से गर्भ की अवस्था में ऊपर की ओर ठोकर देने से गर्भस्थित बालक ठोकर से ऊपर चढ़ता है, इस स्पर्शज्ञान (Sensation) को अंग्रेजी में बेलाटमेंट (Ballotment) कहते हैं। यह भी गर्भ का निश्चय सूचक लक्षण है। परन्तु जरायु के ग्रन्थि रोग में भी ऐसा ज्ञान अनुभव होसकता है।

उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त और भी कई छोटे २ गर्भ के लक्षण हैं परन्तु जब ऊपर बताये हुये चिन्ह अच्छी तरह प्रतीत होजाय तो गर्भ के होने में कोई शंका नहीं हो सकती।

गर्भ के निर्णय हो जाने पर उसके प्रसव समय का जानना भी गर्भणी तथा दाई के लिये बहुत ही जरूरी है। इसके जान लेने से आवश्यक पदार्थों का संग्रह समय के पूर्व हो सकता है। और अचानक प्रसव जो यात्रा में हो जाता है उसका बचाव कर सकते हैं। अर्थात यात्रा बन्द कर देनी चाहिये। गर्भ की औसत, प्रसव के लिये, बहुधा पाश्चात्य विद्वानों ने नौ महीने अथवा २७८ दिन का माना है। और कहीं २, ३२० दिन का भी गर्भ पवित्र मानते है। प्रसव के होने का ठीक समय व दिन का निश्चय करना कठिन है। क्योंकि इसका ठीक २ ठहराव होना मासिक धर्म परही निर्भर है। यह समय पर कभी होता है और कभी नहीं होता, कभी २ दो तीन मास बन्द रह कर फिर होना प्रारम्भ होता है और कभी गर्भ बिना मासिक धर्मके प्रारंभ हुए भी बहुप्रसूताओं मे रह जाता है। और किसी २ में यह (मासिक धर्म्म) गर्भके अवस्था में भी होता रहता है। तथापि प्रसव के निश्चय करने के लिये यह रीति है कि जिस दिन अन्तिम मासिक धर्म बन्द हुआ है, अथवा जिस दिन स्त्री शुद्ध हुई है उस दिन के तिथि से २७८ दिन (अर्थात् नौ महीने आठ दिन) आगे गिनना चाहिये। यह अन्तिम दिन जिस तिथिको पड़े, वही तिथि प्रसव के सप्ताह अथवा पक्ष का मध्यस्थ (बीचका) दिन जानना चाहिये। प्रसव इस तिथि के ५,६ दिन अथवा आठ दस दिन

पहिले व पीछे होगा। क्योंकि गर्भाधान मासिक धर्म के दो दिन पूर्व अथवा आठ दिन पीछे होता है। इसलिये इसमें आठ दस दिन की कमी बेशी पड़ती है। उदाहरण रूप मानलोकि किसी स्त्री का मासिक धर्म प्रतिपदा (परीवा) कृष्ण चैत्र को बन्द हुआ अर्थात् स्नान कर शुद्ध हुई और गर्भ फिर नहीं हुआ। तो उसका प्रसव समय २७८ दिन (नौमहीने आठ दिन) अग्रहन्य कृष्ण पक्ष नवमी को पूरा होगा। अतएव यह अग्रहन्य कृष्ण पक्ष की नवमी उसके प्रसव के सप्ताह तथा पक्ष का मध्य दिन होगा। अर्थात् इस मास के नवमी के तीन चार दिन अथवा ६-७ दिन आगे पीछे प्रसव होगा। जब मासिक धर्म न ज्ञात हो तो बालक के उदर में चढ़ने (६ वें महीने में नाभि तक पहुंचता है) तथा उसके फड़कने (चौथे महीने में) से प्रसव के कालका अनुमान कर लेते हैं।

गर्भ की अवस्था में गर्भिणी को अपने तथा होनहार बालक के लाभ के लिये अपने स्वास्थ्य को उत्तम रखना बहुत ही आवश्यक है। यदि गर्भाधान उपरोक्त रीत्यानुसार योग्य क्रिया से किया गया है, और गर्भवती का स्वास्थ गर्भावस्था में उत्तम रहा है तो प्रसव में कोई कठिनता न होगी, प्रत्युत बहुत ही सुगमता तथा आनंदपूर्वक होगा और प्रसव के पश्चात् प्रसूता का स्वास्थ शीघ्र अपने पूर्व अवस्था को प्राप्त होगा। परन्तु गर्भावस्था में असावधानता करने से केवल अपनी ही नहीं, प्रत्युत होने वाले सन्तान का भी स्वास्थ खराब होता है। इस हेतु स्त्रियों को खाने,पीने पहिनने ओढ़ने, तथा स्वच्छ वायु के सेवन आदि में सावधान रहना चाहिये और बहु परिश्रम से बचना चाहिए।

खाने, पीने का कोई विशेष नियम बना रखना उचित नहीं है। अपने २ स्वभाव व रुचि के अनुसार भोजन उत्तम है। परन्तु इस बात का सदैव ध्यान रहे कि भोजन पुष्ट और शीघ्र पचने वाला हो। आहार पचे बिना फिर से भोजन करना अजीर्ण तथा अन्य रोगों का घर है। प्रथम दो मास में स्त्रियों की क्षुधा कम हो जाती है, किन्तु अभक्ष्य पदार्थों के खाने की इच्छा अधिक होती है। पर इनको (मिट्टी, खपरा इत्यादि) खाना उचित नहीं। बिना भूख के भी न खाना चाहिये। यह अरुचि की अवस्था यदि अधिक दिन रहे तो थोड़ा २ हलका भोजन दिन मे दो तीन बार देना चाहिये पर हठ करके खिलाना उचित नहीं और न अधिक भोजन की पहिले दो मास में आवश्यकता है। क्योंकि बालक की वृद्धि इस समय कम होती है। जब बालक चार मास वा इससे अधिक का होता है तब भोजन की आवश्यकता पहिले की अपेक्षा अधिक होती है। प्रकृति भी इस समय जी के मचलाने व वमन को बन्द कर भूख बढ़ाती है। गर्भिणी अब द्विहृदय। (दो हृदयवाली) कहलाती है। इस हेतु दोनों (मां और बालक) के पोषण के लिये अधिक भोजन का होना आवश्यक है। क्योंकि बालक की बाढ़ भी इस समय अधिक शीघ्रता से होती है। एक बार ही अधिक खालेना हानि कारक है। दिन मे थोड़ा २ कई बार, समय नियत कर और पचा २ कर, भोजन करना उत्तम है। कड़ा मांस, कच्चाफल, मोटा व गरिष्ठ अन्न (मटर, चना, उर्द इत्यादि) मादक और मज्जा वर्धक (चरबी बढ़ाने वाले घी मिठाई इत्यादि) पदार्थों का अधिक उपयोग न करना चाहिये। इनको बिलकुल

त्याग देना अति उत्तम है। अनियमित, कुसमय तथा अप्रमाणित अधिक भोजन करना भी उचित नहीं। कड़े, कच्चे और गरिष्ठ पदार्थों से अजीर्णता, विशूचिका और विलम्बिका आदि रोग होते हैं। घी, मिठाई आदि के अधिक सेवन से चरबी बढ़ती है और बालक मोटा होजाता है, इससे प्रसव मे कष्ट होता है। इस लिये उपरोक्त पदार्थों का त्याग और पुष्ट और शीघ्र पचने वाले पदार्थों का सेवन हितकारी है। अन्नों मे पुराना बारीक चावल (साठी बासमती कदमफूल), दाल (मूंग, अरहर), और गेहूं (मलालिया या दाऊदी); भाजी परवल, गोभी, लौकी, भिंडी, आलू, पालक का साग इत्यादि अच्छे हैं; इनके अतिरिक्त गोरस (घी, दूध इत्यादि) पक्के स्वादिष्ठ फल और हर प्रकार के मेवों का थोड़ा २ सेवन सर्वदा होना चाहिये। रसदार ताजे फल भोजन के आधे घंटे पूर्व अथवा पीछे सेवन करना उत्तम है। मांसा-हारिणी के लिये (सुरुच्या) मांसरस व मछली का खाना अयोग्य नहीं। भोजन मे अधिक पानी का पीना हानिकारक है। इसे भोजन के एक दो घंटे बाद पीना चाहिये। भोजन में दूध पीना चाहिये और भोजन के उपरान्त तक्र (मठा) पीना हितकारी है। मादक पदार्थों मे मद्य, भांग, अफीम आदि किसी का भी विना वैद्य की आज्ञा के सेवन न करना चाहिये। अपने देश में स्त्रियों के अधिक कपड़े पहिनने की चाल नहीं है और न इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है, क्योंकि यह गर्म देश है। जाड़े मे भी कहीं २ बहुत ही कम जाड़ा पड़ता है और सवेरे व रात को एक अच्छी रजाई ओढ़ने से काम चल सकता है। काम करने के समय

तक धूप हो आती है, इस लिये एक कुर्ती या चोली और धोती या लहंगे से अच्छी तरह काम चल सकता है। पर शीतोधिक देशों में शीत का बचाव गर्म कपड़ो से अवश्य करना चाहिये। गर्भावस्था में ढीले और हलके कपड़े पहिनना चाहिये, जिससे माता तथा बालक का कोई अङ्ग न दबे, अथवा स्वास लेने में बाधा न पहुचे। धोती व लहंगे को भी गर्भवती को बहुत कम कर न बाधना चाहिये इस से बालक के बाढ़ तथा ऊपर उठने में बाधा पड़ती है। और उसके स्थान से टल जाने का भय है। पर शीत का बचाव अवश्य करना चाहिये। जिन स्त्रियों की बादी की देह हो, अथवा उदर की पेशिया दृढ़ न हो और बालक के उदर में आने से उसे सामने लटकने का भय हो, उन्हे उदर पेशियो के सहायता के लिये उदर पट्टा बाधना उत्तम है, यह १०, १२ इंच चौड़ा और कमर तक लम्बा उत्तम कोमल कपड़े का बनाना चाहिये। इस में उदर के बढ़ाव तथा घटाव के लिये भी स्थान होना चाहिये। और उसी अनुसार पट्टे से भी उसे छोटा बड़ा करने की सुविधा रखना चाहिये। अनेक प्रकार की उत्तम और लचीली पट्टिया बनीं बनाई भी अंग्रेजी दूकानों में मिलती है। इनके बाधने से भी यह ध्यान रहे कि यह बहुत कसी न हो, जिसमें बालक के बाढ़ में कोई बाधा न पहुचे। गर्भवती स्त्रियों को स्वच्छ वायु सेवन की अधिक आवश्यकता है। क्योंकि वायु ही (प्राणप्रद Oxygen) विकारी रुधिर को शुद्ध करता है जो स्वच्छ और खुले हुए स्थानों में अधिकता से पाया जाता है। यह स्वास के द्वारा फुस्फुस (Lungs) में जाकर शरीर के रुधिर के परमाणुओ से मिलता है, और

उसको शुद्ध कर, उसके विकारी परमाणुओं को लौटते हुये स्वास के साथ बाहर निकालता है। शुद्ध रुधिर फिर हृदय के वाम भाग में जाकर नाड़ियो द्वारा माता और बालक के शरीर में फैलता और उसे पोषण करता है। गर्भवती के रक्त के साथ बालक का भी मल निकलता है, इस से यह अधिक विकारी होता है। यह विकार स्वास तथा मूत्रद्वारा निकलता है। इस लिये गर्भवती को स्वच्छ वायु मे अधिक समय बिताना अथवा काम करना चाहिये। समयानुकूल बाहर आगन अथवा बरामदे में कामकरना, सोना, बैठना आदि लाभदायक है। एक दो महीने तक स्त्रियों को अधिक मानसिक तथा शारीरिक, परिश्रम, करने में हानि नहीं है, परन्तु ज्यों २ समय प्रसव काल की ओर निकट आता (नियराता) जाए त्यो २ उन्हें परिश्रम का कार्य जैसे बोझ उठाना, दौड़ना, कूदना, सीढी या पर्वत पर चढ़ाना, उतरना, यात्रा करना, घोड़े गाड़ी पर सवारी करना और मैथुन कराना वर्जित है। इन से गर्भपात, मूढ़गर्भ और राक्षसी संतान होने का भय रहता है। मानसिक उद्योग अपने यहां बिरली ही स्त्रियां करती है। परन्तु किसी गृह कार्य में अधिक चिंतित रहना अथवा शोकातुर व प्रसन्न होना तथा डरना भी मस्तिष्क तथा स्नायुओं में धक्का पहुंचाता है। और उससे शारीरिक आरोग्यता मे बाधा पहुंचती है। इससे भी स्त्रियो को बचना चाहिये। साधारण परिश्रम अथवा व्यायाम (घर का मामूली नित्य का काम करना, चलना, फिरना, हवाखाना इत्यादि) करना शिथिल अजगर के समान पड़े व बैठे रहने की अपेक्षा अधिक उत्तम है। इससे भोजन पचता, शरीर आरोग्य और चित्त प्रसन्न रहता है, उदर

की पेशियां भी दृढ और बलवान होती हैं, प्रसव में सरलता और रक्त प्रवाह में सहायता मिलती है। परिश्रम के पश्चात् थकावट मालूम होने पर आराम करना तथा सोते समय हाथ पांव दबाना लाभ दायक है।

सोना व उठना भी नियत समय पर होना उत्तम है। आठ, दस घंटा रात्रि और घंटा दो घंटा दिन में विश्राम करना चाहिये। रहने व सोने का घर स्वच्छ और हवादार होना चाहिये, स्वच्छ रहने तथा स्नान करने में आलस्य न करना चाहिये। यदि ठंडे पानी से जाड़े के दिनों में नहाने का जी न चाहे तो दुर्बल स्त्रियों को गर्म जल से नहाना चाहिये। पहिनने और ओढ़ने के कपड़ों को स्वच्छ रखना आरोग्यता के लिये लाभदायक है। सोने के गृह में मिट्टी का तेल विशेषकर मिट्टी के ढेब्रियों में जलाना बहुत ही हानि कारक है। इससे कपड़े, घर आदि सब काले होजाते हैं और धुयें के बारीक २ कण स्वास द्वारा नाकसे फुस्फुस में जाते हैं और स्वास्थ को बिगाड़ते हैं। बन्द व कोठेदार घरों में तो इससे अनेक मनुष्य मरगये हैं।

उपरोक्त शारीरिक स्वच्छता के नियम पालन करने पर भी गर्भवती स्त्रियों को गर्भ के कारण अनेक उपद्रव होते हैं। ये वास्तविक में रोग के कारण नहीं उत्पन्न होते किन्तु गर्भ के साथ २ इनका किसी को थोड़ा और किसी को बहुत होना स्वाभाविक है। अतएव इनसे डरना या कोई चिन्ता न करना चाहिये। ये प्रसव के होते ही स्वयं विलीन हो जाते हैं। परन्तु इनसे बिलकुल असावधान भी न रहना चाहिये, जिससे अन्त में हानि होने का

भय हो। इनके होने के कई कारण हैं। मुख्य ये हैं। पहिला गर्भिणी की इन्द्रियों व अवयवों को गर्भावस्था में अधिक काम करना पड़ता है। दूसरे गर्भस्थित बालक के बोझ का दबाव अन्य निकटवर्ती अवयव धमनी, स्नायुतन्तु आदि पर पड़ने से उनके कार्य में बाधा पड़ती है। इसलिये हृदय का फड़कना, ऊर्द्ध श्वास, का चलना, वमन, पैरों में झिनझिनी व सूजन का होना इत्यादि उपद्रव उपरोक्त कारणों से होते हैं। फुप्फुस (Lungs) और वृक (Kidney) को सब से अधिक परिश्रम पड़ना है। बालक व स्त्री दोनो के पोषण के लिये फुस्फुस रुधिर को शुद्धकर हृदयद्वारा सचालन करता है। वृक उनके शरीर के मलों को रक्त से छानकर मूत्र द्वारा बाहर निकलता है। अतएव हृदय और वृक केकार्योंमें बाधा पड़ने से शरीर में सूजन शीघ्रता से फैलती है, विशेष कर जब मूत्र से शुक्रांस (Albumen) का पात होता है। इस रोग को एल-बुमिनूरिया (Albuminuria) कहते हैं। उपरोक्त कारणों से गर्भिणी स्त्री को पुष्ट कारक योग्य भोजन और स्वच्छ वायु का सेवन करना और अधिक परिश्रम से बचना चाहिये।

गर्भ के प्रारभ होते ही प्रथम मास से जीमचलाने व वमन होने लगता है। जरायु और पाकाशय मे एक प्रकार का स्नैहिक सम्बन्ध स्नायुओं का है। जिससे गर्भ रहते ही जीमचलाने लगता है। किसी २ का विचार है कि जरायु के स्थानान्तर व उसमें सूजन होने से वमन होता है। कभी अरुचिकारी आहार विहार के कारण भी यह होता है। अजीर्ण व मल के रुकने से भी जीमचलाना और वमन होता है यह किसी को कम किसी को अधिक और किसी को

बिलकुल नहीं होता है। प्रातः काल में अधिक और सन्ध्या तक कम होकर बन्द हो जाता है। प्रात काल उठते ही इसका जोर अधिक होता है। किसी २ को यह इतना बढ़ जाता है कि अन्न पेट में ठहरना कठिन हो जाता है और शरीर दुर्बल हो जाता है। यदि अधिक हो तो इसकी उत्तम वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिये, परन्तु साधारण कष्ट के लिये इन उपायों को काम में लाना चाहिए। पलङ्ग पर देर तक सोना या चुपचाप पड़े रहना लाभदायक है। जब भोजन पेट में न ठहरे तो बिस्तर से उठने के पहिले पलङ्ग पर ही उसे खालेना चाहिये, सोडा (Soda Bicarb) जल वा दूध के साथ पिलाना अथवा धान व चावल की लाई को पानी में फुलाकर उस पानी को पिलाना लाभदायक है, कागजी नीबू का रस मिसरी के शरबत के साथ पिलाना चाहिये, अथवा उस में नमक और काली मिर्च मिला गर्म कर चटावे, इनसे वमन शान्त हो जाता है। पेट पर राई का लेप लगाना वा ठढे पानी की गद्दी रखने से भी वमन बन्द हो जाता है। मेरुदंड (रीढ़ की हड्डी) पर बर्फ रबर की थैलो में भर कर रखना उपकारी है, बर्फ का चूसना व दूध के साथ पीना व मलाई की कुलफी खाना हितकारी है, कभी २ गर्म पदार्थों के (गर्म दूध) सेवन से भी वमन बन्द हो जाता है। यदि यह उपद्रव अजीर्ण के कारण हो तो भोजन न दे और उसका प्रबंध ठीक २ करे। त्रिफला (हर्रा, बहेरा, आमला) का चूर्ण कालेनमक के साथ सबेरे सन्ध्या सेवन करे, परन्तु तेज जुलाब न दे। टिंचर नकसवामीका और वाईनम ऐपीकाक (Tincture Nux-vomica and Vinum Ipecoc) एक २ बून्द आधी छटांक पानी

के साथ देनेसे वमन होना रुक जाता है । भोजन पेट में न ठहरे और शरीर दुर्बल होता जाता हो तो पिचकारी द्वारा स्वच्छ रीति से आंत के मलको प्रथम स्वच्छ कर शीघ्र पचने वाले पदर्थों का रस व दूध थोड़ा २ और धीरे २ आंत के भीतर जाने दे इससे भी भोजन के अभाव में शरीर का पालन होता है । परन्तु मलस्वच्छ किये बिना, अथवा अधिक व शीघ्रता करने से अन्त में इसका ठहरना कठिन है ।

अजीर्ण-छाती में दाह का होना, पेट फूलना व खट्टी डकार का आना और मलका रुकना गर्भावस्था मे सदैव होते हैं, इनके भी कारण उपरोक्त ही अवस्थायें हैं । बढ़ते हुए बालक का दबाव पाचन इन्द्रियों पर दूसरे व तीसरे महीने से अधिक पड़ता है, इसलिये यह उपद्रव कभी २ अधिक होते हैं । इनमें त्रिफला,[1] त्रिकटु,[2] पांचों[3] नमक, सोडा, पुदीना और अजवाईन का चूर्ण बनाकर गुनगुने जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। दाह के लिये सोडा आधा पैसा भर मिसरी के शरबत के साथ व नीबू या नारंगी के शरबत के साथ पीना उत्तम है, सोडा, रेवा चीनी, सोंठ, पुदीना और काला नमक का चूर्ण अजीर्ण को दूर कर मलको निकालता और क्षुधा को बढ़ाता है। फ्रूट साल्ट (Fruit salt) व मेंगनेसिया (Magnesia) एक तोलापीने से भी रेचक होता है । ताजे फल (नारंगी, अनार सेब आदि) भोजन के पूर्व वा पश्चात खाने से भूख

(१) त्रिफला=आमलक, हरीतकी विभीत की (बहेरा) सम भाग ।

(२) त्रिकटु-सुगाठी (सोंठ), पिपालि मरिच समभाग ।

(३) पाचो नमक—कचलवण, सैन्धव, सामुद्र, विड़, सौवर्चल (काला) समभाग ।

बढ़ती है, भोजन में रुचि और मल साफ़ उतरता है। मल में अधिक रुकावट हो तो उपरोक्त उपायों के साथ हलका भोजन समय पर खाना और मलत्याग समय पर ही करने का नियम करना चाहिये। बिस्तर से उठने के पूर्व आधा सेर गर्म जल पीना भी लाभदायक है। इन उपायों से लाभ न हो तो मल धावन यंत्र (Enema) द्वारा आंतों को गर्म जल से स्वच्छ करना चाहिये। इसकी भी वही रीति है जैसे कि धावन-प्रवाहिक यंत्र का पहिले वर्णन कर चुके हैं। पर मल को दो चार दिन जमा न होने देना चाहिये। मल बंध जाने तथा जननेन्द्रिय के बढ़ाव के कारण दबाव पड़ने व बार २ तेज जुलाब लेने, गर्म व कड़े स्थान पर बैठने से बवासीर (अर्श) रोग होता है। किसी २ को पहिले ही से यह रोग रहने पर गर्भावस्था में उस पर गर्भ तथा मल रुकने से दबाव पड़ने के कारण अधिक कष्ट होता है। यह किसी को बादी और किसी को खूनी होती है। इसके लिये उपरोक्त रेचक पाचक औषधियां उत्तम हैं। गर्म जल में पोस्ता की ढोंढ़ी छोड़कर भफारा लेने व कपड़े के आंच से गुदा अस्थान को सेकने से जलन व सूजन कम होती है। अफीम और माजूफल मक्खन के साथ लेप करना लाभदायक है। खूनी बवासीर के लिये उपरोक्त लेप लगाना व काढ़ा बनाकर धोना और माजूफल का चूर्ण खाना अच्छा है।

गर्भावस्था में गर्भ के दबाव के कारण इन्द्रियां शिथिल होने तथा रक्त में माता व बालक का विकृत मल पदार्थ अधिक होने से रक्त पतला होता है। इसके निकलने व स्वच्छ करने के लिये परिश्रम करना व साधारण अवस्था

से अधिक स्वच्छ वायु का सेवन करना आवश्यक है। इनमें न्यूनता होने से दिल-धड़कना, ऊर्द्ध श्वास, हाफी और मूर्छा होती है। ऐसी अवस्थाओं में स्वच्छ मैदान में रखना, मुह हाथ धुलाना और पखा करना अच्छा है। तत्पश्चात निर्बलता के लिये लोहासार (दो रत्ती मात्रा) (Ferri-et Quinine citrate फ़ेरी ऐट क्युनाइन साइट्रेट) किसी औषधालय से लेकर सेवनकराना चाहिये। नौसादर और चूना मिलाकर अथवा स्मेलिङ्ग (Smelling salt) सुघाना भी बेहोशी को दूर करता है।

गर्भ के बोझ से पांव की नसों (शिराओं) में रुकावट होती है। इसलिये शिरायें मोटी पड़ जाती हैं। इससे अधिक समय तक खड़ा रहना व पांव मोड़ कर बैठना हानिकारक है। साधारण परिश्रम करना, अराम से लेटना और लचीली और कोमल पट्टी पाव मे नीचे से ऊपर तक बाधकर रखना चाहिये। कच्चा फल, भोजन के उपरान्त फिर भोजन करना व कड़े पदार्थ के सेवन से पतला दस्त तथा आंम पड़ता है। अहार में सुधार, साबूदाना, दूध भात इत्यादि हलका भोजन अथवा केवल दूध व उपवास करना चाहिये। अजीर्ण हो तो पहिले एक तोला रेंड़ी का तेल पीना लाभदायक है। फिर ऊपर बताये हुऐ पाचक और रेचक को देना चाहिये। बेल का शरबत व माड़ भी अफीम के साथ पीना उपयोगी है। कच्ची पक्की (भूनी) सौंफ और काला नमक आदि का चूर्ण आम के बन्द करने में अपूर्व है। सिर व दांत में पीड़ा होना और नींद का न आना बहुधा अपथ्य और रुधिर विकार से होते हैं। मेलेरीयल ज्वर (जाड़ा देकर ज्वर आना)

होने से भी सिर में दर्द होता है। रातमें अधिक भोजन न करना चाहिये, और जिस भोजन से उपद्रव हो उसे भी त्यागना आवश्यक है। मानसिक कार्य बहुत ही कम करना चाहिये। गरमी के दिनो में शाम को स्नान कर बाहर आंगन में सोने से शघ्रि निद्रा आजाती है। और जाड़े के दिनो में हांथ पाव को गर्म पानी से धोकर सोना अच्छा है अथवा गर्म पानी की बोतल पलंग पर बगल में रखना चाहिये। क्युनाईन (Quinine) का प्रयोग ज्वर के लिये करते हैं। परन्तु बहुत थोड़ी मात्रा और विचार पूर्वक देना चाहिये। कभी इससे भी गर्भपात हो जाता है। अजीर्ण से सिरमें दर्द हो तो पाचक रेचक औषधि देना चाहिये। पर रक्त की शुद्धि स्वच्छ वायु के सेवन और औषधि द्वारा करना चाहिये। दांत के पीड़ा में क्रियाज़ोट (Creasote) व क्लोरोफार्म। (Chloroform) एक दो बून्द लगाना चाहिये। मूत्र का रुकना वा थोड़ा २ निकलना वस्ति (मूत्राशय) पर दबाव पड़ने से होता है। प्रारंभ में जरायु के टलजाने से इस पर दबाव पड़ता है परन्तु अन्तिम महीनो में बालक के बढ़ाव के कारण होता है। इसमें उदर पट्टी का उपयोग करना अच्छा है। इससे उदर को सहारामिलता और गर्भ का झुकाव मूत्राशय में नहीं पड़ता है। इसलिये मूत्र नहीं रुकता है। कमर को उठाकर और हाथो के बल झुककर मूत्र त्यागने से भी मूत्राशय पर का दबाव हटकर मूत्र अच्छी तरह निकलता है। यदि उपरोक्त उपायो से मूत्र न निकले तो वैद्य को बुलाना चाहिये। क्योंकि इसके रुकने से अनेक उपद्रव होते हैं। कभी २ दबाव के कारण मूत्र थोड़ा २ बहता ही रहता है।

इससे बाहर खुजली व जलन होती है। इसके लिये पोस्ते के ढोंढ़ी के काढ़ा से धोना चाहिये और स्वच्छ कोमल कपड़ा उस स्थान पर रखना चाहिये।

उदर रोग के लिये प्रथम वर्णन के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। चिड़चिड़ी व भीरु (डरपोंक) स्वभाव वाली स्त्रियों के चित्त को आनंदित व उन्हें उत्तम सजे हुये मकान में रखना चाहिये। अकेले अथवा अधिक जन समूह के साथ न रखना चाहिये। सरदी खांसी के लिये साधारण अवलेह व काढा मुलेठी, सोठ, रूसे की पत्ती का रस इत्यादि मधु के साथ लाभ दायक है।

सब से भयानक उपद्रव गर्भवती को उपरोक्त गर्भावस्था के नियमों के पालन न करने पर वृक्क (मूत्रग्रन्थी Kidney) के कार्य मे बाधा पहुंचने से होता है। यह बाधा उसके कार्य में अधिकता तथा दबाव के कारण होता है। रक्त विकार जो मूत्रद्वारा रक्त से छन कर निकल जाता है, वह वृक्क के कार्य मे अड़चन पहुंचने पर रक्त में ही रह, जमा होकर, रुधिर को अशुद्ध कर विष के समान कार्य करता है। इससे शरीर में सूजन कभी धीरे धीरे और कभी शीघ्रता से फैलती है। शरीर पीला और चर्म झलकने लगता है। कभी २ हाथ पांव मे ऐंठने व कपकपी होती और मूर्छा आजाती है। मूत्रकम और कभी २ रक्त मिला निकलता है। भोजन का सारपदार्थ शरीर को पुष्ट न कर मूत्र से पात होता है। इसे अंग्रेजी में अलबुमिन और रोग को अलबुमिनोरिया (Albuminoria) कहते हैं। अपने यहां शुक्रस स्राव अथवा धातु प्रमेह कहते हैं, इसमें गर्भपात हो जाता है अथवा इसमें दुर्बलता

के कारण प्रसव के कष्ट को सहन न करके तथा उसके पश्चात उपद्रव से ग्रसित हो अधिक स्त्रियां मृत्यु को प्राप्त होती है। इससे स्वच्छ वायु का अधिक सेवन तथा पुष्ट हलका भोजन उत्तम है। औषधियों में शुद्ध लोहासार (Ferri-et Quinine citrate) का सेवन और मलमूत्र व स्वेद प्रेरक विधियों का अवलम्बन करना चाहिये। उपरोक्त उपद्रव के अतिरिक्त गर्भावस्था में गर्भके टलजाने से या स्थानान्तर होने से उदर व पेड़ू में पीड़ा होती है। इसके बचाव के लिये बताये हुये व्यायाम पहिले ही से करना और टलजाने पर योग्य दाई से धीरे २ पेट मलवाकर उसे जगह पर लाना चाहिये। उदर पट्टी का बांधना सब से उपयोगी है। क्योंकि पेटका अधिक मलवाना हानि कारक है। गर्भपात होने का भय रहता है। गर्भ की अवस्था में रक्त निकलने से भी गर्भपात होने का भय रहता है। कितना ही थोड़ा रक्त क्यों न निकले परन्तु उसको सावधानी के साथ बंद करने का यत्न करना चाहिये। किसी २ को मासिक धर्म गर्भ रहने पर भी कई महीने तक होता है। परन्तु इसका बन्द होना ही गर्भ की स्थिरता के लिये ठीक है। रक्तस्राव चोट लगने ऊंचे नीचे पर पैर पड़ने से होता है। यह गर्भपात होने का पूर्व लक्षण है। यह अधिकतर मासिक धर्म के समय पर देखा गया है। अतएव जब रुधिर निकलने का लक्षण जान पड़े तो स्त्रियों को दो चार दिन आराम से खाट पर लेटे रहना चाहिये। गर्म पदार्थों का त्याग करना चाहिये। मासिक धर्म का समय निकल जाने और रक्त बन्द हो जाने पर अपना कार्य फिर कर सकती हैं। अधिक होने पर वैद्य से चिकित्सा

कराना योग है। कमर को सिर से ऊंचा रखना ठंडे पानी का कपड़ा पेडू पर रखना और अफीम का प्रयोग मात्रानुसार करना चाहिये। गर्भपात कभी २ आपसे हो जाता है और कभी २ अपवित्र गर्भ (हराम हमल) रहने पर लोक लज्जा के कारण कराया जाता है। किसी २ का ख्याल है कि गर्भ का दो तीन महीने के भीतर पात कराना सरल है। पर यह भूल है। यद्यपि गर्भ का लगाव जरायु से अच्छी तरह दृढ़ नहीं होता तथापि प्रकृति उसे ऐसे बन्द सदूक में रखती है कि उसका वहां से निकलना कठिन है। कोई २ सूजन व जलन उत्पन्न करने वाले पदार्थों की बत्ती बनाकर योनि में गर्भपात के लिये रखती है। परन्तु इससे हानि के अतिरिक्त लाभ बहुत कम देखने में आया है। अतएव ऐसे पापकर्म से बचना सदैव उत्तम है।

गर्भ का किसी महीने में गिरना गर्भपात कहाता है। परन्तु वैद्यक में इसके कई भेद हैं। एक पिंडपात अर्थात् गर्भ का पिंडावस्था में अथवा चार महीने के भीतर गिरना। इसे गर्भस्राव कहते हैं। दूसरा गर्भपात अर्थात गर्भ का चार महीने के ऊपर गिरना। बालक सात महीने के नीचे का जीता उत्पन्न होने पर भी जी नहीं सकता। परन्तु सात महीने के बाद गिरने से, यद्यपि बालक के अवयव दृढ़ नहीं होते तथापि उसका पोषण अच्छी तरह होने से जी सकता है।

परिश्रम का कार्य करने अर्थात दौड़ने, कूदने, भारी पदार्थ उठाने, घोड़े व ऊंट पर सवारी करने, रेलगाड़ी में ठोकर लगने, ऊपर चढ़ने उतरने में पांव का ठीक २ न पड़ने तथा झटका लगने, मस्तिष्क में शोक व आनंदित

समाचार के कारण धक्का पहुंचने, डरजाने, तेज जुलाब लेने इत्यादि के कारण गर्भपात होता है। अनेक रोगों में भी गर्भपात हो जाता है, जैसे कम्प-ज्वर (Malarial fever) सेन्दूरीज्वर (Scarlet fever) बोदला, झरना, इन्फ्लुएंझा (Influenza) इत्यादि।

किसी स्त्री को एक बार गर्भपात होने से दूसरे गर्भ में भी उसी समय पात होने का भय रहता है। और किसी २ में गर्भपात होने का स्वभाव प जाता है। यदि इसे योग्य चिकित्सा द्वारा रोकने का उपाय न किया जाय तो सन्तान का होना असम्भव है। गर्भपात बहुधा उन दिनों में अधिक होता है जिन दिनों में स्त्रियों को, गर्भ न रहने पर, मासिक धर्म होता है। अत एव इन दिनों में स्त्रियों को अधिक परिश्रम न कर दो चार दिन शैय्या पर विश्राम करना चाहिये मासिक धर्म का समय निकल जाने पर पात का भय कम हो जाता है। गर्भपात का पूर्व रूप अच्छी तरह मालूम नहीं होता, इसलिये इसमें असावधानी होना सम्भव है। इसमें पहिले आलस्य, अनुत्साह और कमर में पीड़ा मालूम होती है। कभी २ हाथ पांव में ज्वर के समान कम्प होता है। फिर योनि से थोड़ा २ रक्त का दाग़ कपड़ों पर दिखाई देता है। यदि इस समय इस ओर ध्यान न दिया जाय तो पीड़ा तीव्र और फटन के समान हो रक्त किसी समय इतना अधिक निकलता है कि गर्भ पात ही नहीं होता वरन योग्य चिकित्सक न हो तो प्राणान्त का भय होता है। रुधिर योनि के धमनियों और शिराओं से निकलता है, ये आमरवेबर जरायु से अलग होने के कारण

टूट जाती हैं, खून के पश्चात ही अथवा कभी २ साथ ही पिंड तथा बालक (छोटा हुआ तो) झिल्ली में लपटा हुआ निकल आता है। परन्तु चार महीने के ऊपर गर्भपात प्रसव के समान ही होता है। अर्थात झिल्ली फाड़ कर बालक पहिले उत्पन्न होता है फिर आमरवेवर गिरता है। शरीर भारी मालूम होते ही अथवा पीड़ा व रक्त का दाग दीखते ही गर्भवती को सब काम छोड़ कर विश्राम करना चाहिये। जिसे (पूर्व में) एक बार गर्भपात हो चुकाहो उसे तो और भी सचेत रहना चाहिये। विशेष कर उन दिनों में जिस समय, उसका गर्भ न रहता, तो मासिक धर्म होता। ऐसे समय में शय्या पर चुप चाप चार छ. दिन पड़े रहने तथा ठंडे व हलके चीज़ों के सेवन करने व भीगा कपड़ा पेड़ू पर रखने व कमर को ऊंचा रखने से गर्भपात का बहुत कुछ बचाव हो सकता है। अफीम को किसी रूप में मात्रानुसार देना इसके रोकने में लाभदायक है, परन्तु योग्य वैद्य की इसमें सलाह लेना आवश्यक है। यह उपाय तभी तक उपयोगी हैं जब तक योनि से थोड़ा २ रुधिर निकलता है, अर्थात् जिस समय तक कि बालक का आमरवेवर जरायु से अलग नहीं हुआ है, क्योंकि जब आमरवेवर जरायु से अलग होगया तब बालक का सम्बन्ध माता से छूट जाने पर उसका पोषण होना असम्भव है। जब ऐसी अवस्था आती है तब रुधिर और पीड़ा में अधिकता होतीहै और प्रकृति गर्भपात के लिये प्रयत्न करती है। तब उसका शीघ्र पात होना ही उत्तम है। कभी २ आमरवेवर जरायु के भीतरी भाग में न लग कर उसके मुख पर लगती है इस अवस्था को प्लेसंटा प्रीविया

(Placenta prævia) मुखाच्छादित आमरवेवर कहते हैं। इस दशा में जब जरायु का मुख छठवें सातवे महीनों बढ़ता है तब आमरवेवर पर तनाव पड़ने से अलग हो जाता है और जब वह जरायु को छोड़ता है तब रक्त स्राव अधिक होता है, इस अवस्था में गर्भ सात महीने के ऊपर नहीं जासक्ता। और जब रक्त स्राव शीघ्रता से हो रहा है तब इसके रोकने का प्रयत्न करना निष्फल है। स्वच्छ अंगुली से आमरवेवर को जरायु के मुख पर से एक ओर हटाकर प्रसव कराने का उपाय करना चाहिये। इस में योग्य वैद्य की सहायता होनी चाहिये।

जब कभी वैद्य वा दाई न हो और गर्भपात होने पर रक्त स्राव अधिक हो और बन्द न होता हो तब उस समय स्वच्छ कपड़े को गर्म जल में उबाल, और ठंढा कर अथवा "वारेके धावन" में भिगाकर जरायु में भरना चाहिये। इस से रक्त स्राव बन्द हो जाता है। परन्तु इस में स्वच्छता का पूरा २ विचार रहे। गर्भपात हो जाने पर उसका प्रबंध वैसा ही होना चाहिये जैसा की प्रसवका करते हैं। यह प्रसव प्रकरण में विस्तार पूर्वक वर्णन किया जायगा।

तृतीय-प्रस्ताव।

प्रसव-काल।

गर्भ रहने पर यह नौ महीना आठ दिन अथवा २७८ दिन बाद आप ही आप पके फल के समान गिरता है। अर्थात् बालक संसार में मा के पेट से बाहर आता है। इस क्रिया को "प्रसव" और समय को "प्रसव काल" (पैदा होने का समय) कहते हैं। इसमें वेदना होना स्वाभाविक है।

इस लिये इसे "प्रसव वेदना" कहते हैं और इसका होना बालक के उत्पन्न होने के लिये आवश्यक है। इसलिये स्त्रियों को इससे भयभीत न होना चाहिये। जब गर्भवती का स्वास्थ उपरोक्त नियम और आचरण द्वारा उत्तम है तो उसे प्रसव वेदना से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है और न उस पर इसका असर ही जान पड़ता है। परन्तु जिनकी आरोग्यता अच्छी नहीं और शरीर दुर्बल है उन पर प्रसव का प्रभाव अधिक होता है। इस लिये उन्हे अपनी स्वास्थ प्रसव के पश्चात सम्भालने में अधिक समय और सावधानी की आवश्यकता होती है क्योंकि उनके अवयव उस समय शिथिल होने के कारण मलिनता तथा मलिनपदार्थों के उपयोग से अनेक रोगोत्पादक जन्तु योनि द्वारा शरीर में प्रवेश कर रोग को उत्पन्न करते हैं। पाश्चि-मात्य देशों के पूर्व इतिहास तथा अपने यहां की साम्प्रति अवस्था का विचारकर देखने से प्रतीत होता है कि प्रसव काल व प्रसवावस्था में ही स्त्रियों की मृत्यु सख्या अधिक है। हमारे यहां एक तो इस विषय का ज्ञान स्त्री पुरुषो को कम है। दूसरे-मान-मर्य्यादा तथा लज्जा के विचार से इसमें योग्य पुरुषों की कुछ भी सहायता नहीं मिलती है। परन्तु पाश्चिमात्य देशो में प्राणो को इस लज्जा और मान से अधिक मूल्यवान समझते हैं। इस लिये उनके यहां प्रसव में योग्य से योग्य वैद्यों की सहायता मिल सकी है। और वे सैकड़ों रुपये इसमें खर्च करते हैं। आज कल नये २ यन्त्रों तथा औषधियों के आविष्कारों (मालूम होने व निकलने) तथा वैज्ञानिक उन्नति द्वारा पाश्चिमात्य लोगो ने प्रसव को इतना

सरल कर दिया है कि अब इसमें मृत्यु विरलों हीं की होती है । गर्भ निकालने के लिये अनेक प्रकार के यन्त्र, (शंकु) अचेत करने की औषधि (क्लोरोफ़ार्म) अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) और रोगोत्पादक जन्तु विज्ञान आदि का फैलाव सारे संसार को चकित कर उत्तम लाभ पहुंचा रहें हैं । हम लोगों को भी इनका ज्ञानोपार्जन कर लाभ उठाना उचित है।

पाश्चिमात्य विद्वानों का दृढ़ विश्वास है, तथा उन्होंने परीक्षाद्वारा सिद्ध कर दिया है कि रोगो के उत्पादक एक प्रकार के छोटे २ कीड़े व जन्तु हैं । इन्हे कीटाणु व अणुजन्तु (Bacteria) कहते हैं । ये मलिनता के द्वारा शरीर में प्रवेश कर रोग को उत्पन्न करते हैं । इसलिये स्वच्छता का अवलम्बन करने से रोगों का नाश हो सकता है । ये अणु-जन्तु जल, वायु और पृथ्वी (रज) के मेल से सर्वत्र पाये जाते हैं । अतएव संसार में जितने पदार्थ व स्थान हैं अवस्थानुसार मलिन समझना चाहिये जब तक कि उन्हें नियमित रीति से स्वच्छ न करलें । इन अणुजन्तु को मारने के लिये अथवा किसी पदार्थ को स्वच्छ करने के लिये अनेक औषधियां और उपाय है परन्तु सब में पारा और उष्णता श्रेष्ट हैं । पारा, (एक भागपारा में २००० भाग जल) कारबोलिक एसिड (१ में ४०), लाइसोल (१ में ४०) इत्यादि का धावन हाथ, शस्त्र, यन्त्रादि को स्वच्छ करने के लिये किसी औषधालय से मगा सकते हैं । इनके न होने पर तथा इनको स्वच्छ करने के पूर्व भी सब आवश्यक पदार्थों तथा हाथ आदि को काम में लाने के पहिले गर्भ जल से स्वच्छ करना तथा अन्य पदार्थो को थोड़े देर तक (पावघटा)

गर्मजल में डाल कर उबालना, फिर स्वच्छ हाथों से पकड़ कर उपरोक्त औषधियों के धावन में कार्य मे लाने के समय तक रखना, फिर कार्य में लाना स्वच्छता की उत्तम श्रेणी है। इस प्रकार पदार्थों को स्वच्छता पूर्वक प्रयोग में लाने से रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। तथा शस्त्र प्रयोग के पश्चात् घाव को इन्ही धावनो से स्वच्छ रखने पर उसमें पीव नहीं पड़ सकती, और घाव शीघ्र आरोग्य हो जाता है। स्त्रियों को प्रसव तथा गर्भपात में पदार्थों को बिना उपरोक्त रीति द्वारा स्वच्छ किये कार्य में न लाना चाहिये। दाइयों तथा अन्य सहायक स्त्रियों का हाथ, कपड़ा, नाल काटने का शस्त्र डोरा मलिन शैय्या, धावन यत्र आदि कोई पदार्थ स्वच्छ किये बिना काम में न लाना चाहिये। और जो पदार्थ व यंत्र किसी गर्भवती की रुग्नाअवस्था में काम आया हो उसे बिलकुल ही त्याग करना चाहिये जबतक वह अच्छी तरह स्वच्छ न किया गया हो। अल्पमूल्य की वस्तु को तो सर्वथा त्यागना उत्तम है। ऐसे मलिन वस्त्र, यत्र, स्थान खाट आदि के प्रयोग से प्रसूता के जरायु में अणुजन्तु प्रवेश कर सड़ावट (Putrefaction) उत्पन्न करते हैं। यह सड़ावट और जन्तु फिर खुले हुऐ धमनी और शिरा द्वारा रुधिर मे प्रवेश कर विष कार्य करते हैं। और अनेक स्त्रियां इससे अकाल मृत्यु को प्राप्त होती हैं। इस रोग को अंगरेजी में परप्युरल् फ़ीवर व सेप्टिसीमियां (Puerperal fever or septicæmia) अर्थात् प्रसूत ज्वर-अथवा (सड़ाव) कोपोत्पन्न ज्वर कहते हैं। इस ज्वर में सैकड़े पीछे निन्यानवे मृत्यु सख्या होती है। परन्तु जब से यह अणुजन्तु विज्ञान तथा अकोथ स्वच्छता (Aseptic)

का प्रचार हुआ है तब से यह आजकल विरलों ही को होता है। इसका वर्णन किया जायगा।

पाश्चिमात्य देशों में प्रसव के लिये बड़ी चौकसी की जाती है। गरीब भी इसमें कभी असावधान नहीं रहते। और उनके पास द्रव्य होने पर ख़र्च करने से नहीं रुकते। धनवानों की तो बात ही निराली है। उनके यहां जितना ख़र्च का आडम्बर हो सब ठीक ही है। योग्यवैद्य और दाई का कई महीने पूर्व ही से नियत करना सर्व साधारण का प्रथम कर्तव्य है। एक प्रसव के लिये वे वैद्यको ५०) से ७५) रुपैया और दाई को ५) से १०) रुपैया मेहनताना देते हैं। परन्तु जो साल भर के लिये (गर्भावस्था से प्रसूतावस्था तक) वैद्यको लगाते है वे ७००) से १५००) रुपैया तक देते है। और वे जो अपने घर पर वैद्य अथवा दाई को बुलाने का व्यय उठा नहीं सकतीं, वे मुख्य अस्पतालों में जाकर प्रसव कराती हैं। परन्तु हमारे यहां वैद्य और शिक्षित दाई के स्थान पर मूर्ख चमारिन या अन्य जाति की महा मूर्ख वृद्ध स्त्रियां ही इस कार्य को करतीं हैं। इन्हें इस विषय का ज्ञान न रहने के अतिरिक्त, अनेको को अनुभव तक भी नहीं रहता है। केवल परम्परा से उनके वंश में यह कार्य चला आता है इसलिये वे भी अपना हक पाने के लिये इस कार्य को करने लगती हैं, गांवों में प्रत्येक चमारिन के दो २ चार २ घर बंधे हुए हैं, काम पड़ने पर वे अपने २ यजमानों का यह कार्य करती हैं, इनमें और शिक्षित वैद्य व दाइयों में कितना अन्तर है पाठक पाठिका स्वयं समझ सकती हैं। हमारे यहां प्रसव में अधिक मृत्यु होने को कारण यही मूर्ख

चमारिनें हैं । ऐसे दाइयों से लाभ होना स्त्री का ही भाग्य है अथवा प्रकृति देवी अनुकूल हो तो लाभ हो सकता है, नहीं तो बचना असम्भव है । कितनी स्त्रियां मृढ़ गर्भ व प्रसूत ज्वर से और कच्चे मलिनता से नाल काटने के कारण धनुस्तम्भ और विसर्प रोगों से मरते देखे गये हैं । अतएव इन मूर्ख दाइयों का त्याग और शिक्षिता दाइयों का उपयोग करना उत्तम है । परन्तु दाई गर्भवती के इच्छानुसार स्वच्छ और उत्तम स्वभाव वाली तथा अपने कार्य में योग्य होना चाहिये । दाई को प्रसव गृह में आने के पूर्व किसी विषैले रोगी के पास से व विषैले घाव को धोकर न आना चाहिये नहीं तो प्रसूता को भी विषैले रोग व घाव की छूत लगाने से प्रसूत ज्वर हो जाता है । इसलिये अंग्रेज़ लोग दाई को प्रसव के कुछ दिन पूर्व से ही नियुक्त कर घर में रखते हैं । वह आवश्यक पदार्थों को अपने पास प्रसव घरमें रखती है और जो कम हो उन्हें मंगा सकती है । क्योंकि समय पर इन सब का प्राप्त करना असम्भव है ।

प्रसव के लिये स्त्री को एक उत्तम स्वच्छ और हवादार वायुसंचारक (Ventilated) गृह में रखना चाहिये । सुश्रुत में प्रसूत के गृह का वर्णन यों लिखा है । गर्भणी स्त्री नवें महीना सूतिकागार में प्रवेश करे इसे देश भाषा में सौरी या सोवर कहते हैं । इस घरका निर्माण इस रीति से होना चाहिये । उस भूमि को ब्राह्मण श्वेत, क्षत्री लाल, वैश्य पीली, और शूद्र काली मिट्टी से पुतवावे खाट बेल, बर, तेंदू और भिलावा की वर्णानुसार होनी चाहिये । दीवालों को पोतवाना और उस गृह के सामान को पृथक २ होना

(रखना) चाहिये। द्वार पूर्व व दक्षिण की ओर होना चाहिए। घरकी लम्बाई आठ हाथ और चौड़ाई चार हाथ होनी चाहिये। उसमें रक्षा और मंगलकारी सूचकवस्तु लगी रहनी चाहिये।

पाश्चिमात्य वैद्यों के मत के अनुसार एक अस्वस्थ्य (रोग) मनुष्य के लिये कम से कम दस फुट लम्बा दस फुट चौड़ा और दस फुट ऊंचा स्थान रहने के लिये आवश्यक है। इसमें वायु का हेरफेर घंटे में तीन बार होना चाहिये। परन्तु प्रसव गृह में माता और बालक के अतिरिक्त एक मनुष्य के लिये और भी स्थान की आवश्यकता है, उपरोक्त हिसाब से सूतिकागार बीस फुट लम्बा, दस फुट चौड़ा और बारह फुट ऊंचा अवश्य होना चाहिये। यदि घर इससे छोटा हो तो उसमें वायु का आगमन घंटे में कई बार होना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के लिये कमसे कम ३६०० घन फीट स्वच्छ वायु की आवश्यकता प्रत्येक घंटे में होती है। इसके लिये घरों में खिड़कियों का होना आवश्यक है जिससे उपरोक्त भाग वायु का प्रत्येक घंटे में पहुंच सके। द्वार व खिड़कियों का पूर्व व पश्चिम होना प्रकाश व वायु के लिये उत्तम हैं। खिड़कियां होने से घर में अधिक मनुष्यों के आनेपर उनको खोल कर वायु का संचार आवश्यकतानुसार कर सकते हैं। तीक्ष्ण और तीव्र वायु के होने पर खिड़कियां बंद कर अथवा परदा व चिक डाल कर उसके वेग को रोकना चाहिये और अग्नि द्वारा उसे गर्म रखना चाहिये, परन्तु स्मरण रहे कि बंद घरमें धुवां का होना हानि कारक है। घरमें कूड़ा कचरा जमा करना तथा

उसके पास पाखाना व नाबदान का होना प्रसूता की आरोग्यता के लिये हानिकारी हैं। कूड़े कचरे को दूर फेंकना और पायखाना व नाली को फेनायिल (Phynıle) डालकर रोज़ स्वच्छ कराना चाहिये। गृह को चूने से पोतना और उसमें आवश्यक सामान का ही होना उत्तम है। रात में प्रकाश के लिये तिलों का तेल जलाना लाभदायक है। परन्तु जब हम आज कल की सूतिकागार की दशा पर विचार करते हैं तो हृदय कांप उठता है। कहां वह आचार्यों का बनाया विधि से सुसज्जित, मनोरंजक स्थान और कहां यह आज कल का नरक समान स्थान। यदि इस पर मृत्यु संख्या बढ़जावे तो आश्चर्य ही क्या है? आज कल प्रसूता व सूतिकाघरों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। मलिन से मलिन घर प्रसूता को दिया जाता है। जहां कूड़ा व करकट का ठिकाना नहीं कि कितना रहता है। शारीरक स्वच्छता के लिये अति मलिन, फटा पुराना कपड़ा पहिरने को दिया जाता है। लू के डर से शीत के बचाव के लिये भी योग्य और यथेष्ट वस्त्र पहिरने को नहीं दिये जाते परन्तु घरके एक २ रंध्र या छिद्र व किवाड़ आदि उसके बचाव के लिये बंद कर देते हैं। यहां तक कि उसमें वायु अथवा सूर्य्य की किरण भी नहीं पहुंच सकती। गृह के वायु को गरम रखने के लिये अग्नि का काम धुएं से लिया जाता है। एक तो उस घर की वायु बहुत कम बदलने पाती है, दूसरे उसमें धुवां कंडा, लकड़ी व मिट्टी के तेल की ढिबियां द्वारा इतना किया जाता है कि ठिकाना नहीं। इस पर भी यदि स्त्री व बालक का स्वास्थ्य न बिगड़े तो उनका सौ-

भाग्य ही समझना चाहिये। अतएव उपरोक्त दोषों का सुधार अपने पूर्वज तथा पाश्चिमात्य विद्वान आचार्यों के मत के अनुसार अवश्यही होना चाहिए।

प्रसव के कुछ काल पूर्व ही से स्त्री पुरुष तथा दाई को उचित है कि प्रसवागार को उपरोक्त विधि के अनुसार ठीक कर उसे स्वच्छ करे और चूना से पोतवाने पश्चात उसे वीर पुरुषों और विद्वानों के सुन्दर चित्र तथा आवश्यक पदार्थों से सुसज्जित करना चाहिये। सामान रखने के लिये एक छोटी संदूक वा अलमारी अथवा उत्तम ताख होना चाहिये। खाट उत्तम, नवीन अच्छी तरह बिनी और तनी होनी चाहिये। यदि पुरानी हो तो किसी संक्रामिक रोगी की उपयोग की हुई न होनी चाहिये।पुराने निवाड़ व खाट को खौलते हुए पानी से स्वच्छ कर काम में लाना चाहिये। ओढ़ने और पहिरने के कपड़े यदि नये न हो तो धुले कोमल और स्वच्छ अवश्य होने चाहियें, क्योंकि मलिनता से अनेक रोगों के होने का भय रहता है। सूतिकागृह में दाई और एक दो वृद्ध अनुभवी स्त्रियां तथा वैद्य का प्रसव के समय होना आवश्यक है। पर भीड़ जमा होने की कोई ज़रूरत नहीं है। बिछौने पर बिछाने के लिये एक दो टुकड़ा दो गज लंबा तीन हाथ चौड़ा तैल वस्त्र का लंगोटी लगाने के लिये दो चार स्वच्छ रूमाल व मलमल का टुकड़ा, नाल काटने के लिये भोंथरी कैंची नाल बांधने के लिये स्वच्छ किया हुआ अथवा कारबोलिक पावन में भिंगा हुआ रेशम या तात का डोरा, हाथ धोने के लिये कार-बोलिक साबुन और नख स्वच्छ करने के लिये कूंची,

बालक का शरीर स्वच्छ करने के लिये मामूली साबुन चिलमची, उत्तम, गर्म जल और अग्नि मल मूत्र और नाल आदि के लिये दो तीन पात्र आदि के अतिरिक्त स्वच्छ तिल्ली का तेल, उत्तम ग्लीसरिन, दूध, बोरोसिक कपड़ा और रुई, स्वच्छ किया हुआ मलमल का टुकड़ा और पेट बांधने के लिये स्वच्छ कोमल और नवीन वस्त्र (मलमल) की चार छै उदरपट्टी का होना अति आवश्यक हैं। वैद्य के आने पर और जो २ पदार्थों की वह आवश्यकता बतावे वे भी मंगवा लेना चाहियें। साधारण औषधियों में टिंक्चर ओपीआई (Tincture opii) अफीम का अर्क एक्सट्रैक्ट अरगट लिक्वीड (Extract Ergot Liquid) आइडोफर्म (Iodoform) पारे व कारबोलिक का धावन इत्यदि का होना आवश्यक है। औषधियों को किसी औषधालय से मंगाकर चौकसाई के साथ ताले के अंदर बंदकर रखना चाहिये, क्योंकि ये सब विष है। इसलिये इनका उपयोग बिना अच्छी तरह जाने समझे दाई व वैद्य के अतिरिक्त औरों को न करना चाहिए। इनके अतिरिक्त हमारे आर्य्य आचार्यों ने ओखली, मूसल, पखा, लोहे, चांदी और सुवर्ण आदि के टुकड़े और अनेक औषधियां मधु, गुड़ सोंठ, पीपल बच, हींग, सरसों अजवाइन अथवा सुरा इत्यादि उपस्थित रखना लिखा है। उपरोक्त पदार्थों को काम में लाने के पूर्व स्वच्छ कर प्रयोग करना चाहिये, स्वस्छ करने में पदार्थों का गुण व स्वभाव नष्ट न हो इसका विचार कर स्वच्छता के उपायों का प्रयोग में लाना चाहिये। कपड़ों को धोबी के भरोसे न रखना चाहिये परन्तु घर में

भी स्वच्छ कर लेने चाहियें क्योंकि धोबी के यहां अनेक रोगियों के मलिन कपड़े धोने के लिये जाते हैं इसलिए उनके मैल से आरोग्य मनुष्य के भी कपड़े रोगयुक्त होकर रोग उत्पन्न करते हैं। उदरपट्टी १८ इंच चौड़ी और १½ गज लम्बी होनी चाहिये। इसे बांधने के लिये सुरक्षित आलपीन (Safety pins) एकदरजन होना अथवा उसमें बंद लगाना चाहिये। कई एक रहने में इनको धुलाने में सुबिधा होती है। तैलवस्त्र से प्रसव तथा प्रसव के पश्चात भी रुधिर मल आदि से बिछौना खराब नहीं हो सकता, ऊपर का चद्दर ही खराब होगा इसे बदल और तैलवस्त्र को गर्म जल व औषधियों से जल्द स्वच्छ कर सकते हैं। लगोटी व रूई की गद्दी स्राव सोखने के लिये यथेष्ट रखना चाहिये। क्योंकि इनको दिनमें कई बार बदलने की ज़रूरत होती है। रक्त स्राव से दुर्गन्धि होते तथा उसके विकृत रूप धारण करते ही भवन प्रवाहक यंत्र की आवश्यकता होतीहै।

सौरवती होने के पूर्व स्त्री को पीड़ा उत्पन्न होती है। इसको प्रसव वेदना कहते हैं। यह दो प्रकार की है। एक मिथ्या (असत्य व झूठी) दूसरी सत्य व सच्ची मिथ्या प्रसव वेदना में पीड़ा तथा योनि का सकोचन नियमानुसार नहीं होता और न यह नियमानुसार बढ़ता है। यह उदर के अग्रभाग में होता है। इसमें रक्त स्राव नहीं होता है। परन्तु सत्य प्रसव वेदना जरायु के पीछे के भाग से प्रारंभ होकर आगे की ओर बढ़ती और रक्त निकलता है। असत्य प्रसव वेदना में जरायु का मुख विस्तीर्ण नहीं होता और सत्य प्रसव में होता है। असत्य प्रसव वेदना

मल मूत्र के रुकने से होती है और इनके खुलने से शान्त हो जाती है। प्रसव वेदना में पहिले जरायु और फिर उदर के पेशी तन्तुओं का सकोचन के दबाव से बालक नीचे उतरता है और योनि का मुख फैलता है। यह सकोचन क्रिया ज्यों २ बढ़ती है त्यों २ पीड़ा की अधिक तीव्रता होती है। जब बालक योनि द्वार से नीचे उतरता है तब यह असह्य हो जाती है और इच्छा करने पर भी यह नहीं रुक सकती अन्त में उदर के पेशी भी इस की सहायक हो जाती है। किसी २ में यह वेदना असह्य और देर तक (विशेष कर नव प्रसूता में) होती है, परन्तु किसी २ बहु प्रसूता में यह बिलकुल नहीं मालूम होती और बालक उत्पन्न हो जाता है।

प्रसव—प्रसव प्रारंभ होने के पूर्व बहुधा ऐसे लक्षण दृष्टि गोचर होते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि प्रसव दो चार दिनमें होने वाला है। जैसे बालक का नीचे उतरना माता के श्वास लेने में सुगमता होना योनि से रक्त निकलना, जरायु के ग्रीवा का लीन होना इत्यादि। इस अवस्था के तीन विभाग किये गये हैं।

प्रथमावस्था जरायमुख का फैलना—इसमें गर्भाशय का मुख फैलता है और इसमें १० से १२ घटे लगते हैं, प्राय. नव प्रसूता में यह अवस्था देर तक रहती है।

द्वतीयावस्था बालक का उत्पन्न होना—जरायु के मुख विस्तृत होने के बाद से लेकर बालक के उत्पन्न होने तक रहती है, यह अवस्था बहु-प्रसूता में २, ३ घटे में ही अन्त हो जाती है, परन्तु नव-प्रसूता को अन्य अवस्थाओं से इसमें

अधिक काल लगता है, कभी कभी २४ घन्टे लग जाते हैं।

तृतीयावस्था-नाल का गिरना-बालक के उत्पन्न हो जाने के पश्चात आमरखेवर के गिरने तक रहती है। इस अवस्था में सब से कम समय लगता है, अधिक से अधिक एक घंटा नहीं तो आधे घंटे में ही गिर पड़ता है।

प्रथमावस्था का दृश्य -इस अवस्था मे जरायु के पेशी तन्तुओं में सकोचन क्रिया प्रारम्भ होने से बालक नीचे को दबता और जरायु का अग्रभाग पतला होकर उसका द्वार फैलता है। ज्यों २ जरायु का मुख फैलता है, त्यों २ झिल्ली की थैली जिसमें बालक रहता है निकलती आती है। कभी २ इसके बिना फटे ही बालक थैली सहित उत्पन्न होता है, परन्तु यह अवस्था बहुत कम देखने मे आती है। अधिकतर यह झिल्ली जिसमें पानी भरा रहता है बालक के उपस्थित (पहिले निकलने वाले) भाग के दबाव से फट जाती है और उसमें से थोड़ा फेनीला जल निकल आता है। शेष जल उपस्थित भाग (बालक का मस्तक) जरायु के मुख को बन्द कर लेने से सिर के उत्पत्ति तक भीतर रूक जाता है। कभी २ यह झिल्ली दृढ़ होने के कारण आप से नहीं फटती तब उसे फाड़ना पड़ता है। परन्तु जब तक जरायु का मुख पूर्णता से विस्तृत न हो जाय तब तक इसे फाड़ना न चाहिये।

जरायु का मुख जब अच्छी तरह फैल जाता है तब जरायु और योनि का मार्ग एक ही नाली मे हो जाता है। इस अवस्था में मल और मूत्र बार २ त्यागने की इच्छा होती है। स्त्रियां दर्द के मारे इधर उधर टहलती फिरती हैं

द्वतीय अवस्था का दृश्य.-इसमें वेदना की तेज़ी

होती है । इस कारण बालक का अग्रभाग (उपस्थित) नीचे उतरता है। इस कार्य में उदर की पेशियां भी सहायक हो जाती हैं प्रसव में सहायता पहुंचाने के लिये हमारे यहां स्त्रियां खटिया व सहायक स्त्रियों के सहारे अथवा स्वयम् हाथ पांव के बल उकरूं बैठकर पेट को जोर से मलती व दबाती और श्वास को रोक कर ज़ोर से काखती हैं। सहायक स्त्रियां भी पेट को दबाये रहतीं हैं कि बालक ऊपर न खसके, परन्तु अंग्रेजों में यह चाल नहीं है। वे खाट पर लेट कर प्रसव करती हैं। यही धन्वन्तरी जी का भी मत है। प्रसव में सहायता पहुंचाने के लिये वे खाट के ऊपरी सिरे से अगौछा बांधकर दोनों हाथों से पकड़तीं और पैताने में पांव को अड़ाकर श्वास को रोकतीं और ज़ोर से काखती है। वेदना के समय से ऐसा करने से बालक नीचे उतरता और वेदना के मध्यस्थ-अवस्था में स्थान पर रहता है : ज्यों २ वेदना तीव्र होती है त्यों २ बालक का उपस्थित भाग (Presenting part अवतरितभाग) नीचे उतरता है और योनि के मार्ग से होता हुआ और मूलाधार (योनि और गुदा के मध्य का स्थान) को फैलाता हुआ बाहर निकलता है। उपस्थित भाग (मस्तक) के निकलते ही शेष शरीर थोड़े समय मे निकल-आता है। तत् पश्चात बचा हुआ पानी और रुधिर के लोथड़े निकलते हैं।

तृतीया वस्था--बालक के उत्पन्न हो जाने के पश्चात् वेदना आधे या एक घंटे के लिये माता के शिथिल पड़जाने से बन्द हो जाती है, और उसके चैतन्य होते ही फिर प्रारम्भ हो जाती है, इससे आमरवेवर गर्भाशय को छोड़

कर बाहर निकल आती हैं। जब यह आप से बिना खींचे निकलता है तो यह लपटा हुआ रहता है। और वह सतह जो योनि से चिपकी थी वह भीतर को मुड़ी रहती है। आमरवेवर के निकलने से जरायु के शिरा और धमनियों का मुख जहाँ आमर-वेवर लगा था, टूट कर अलग होने के कारण खुल जाता है। यदि वेदना (जरायु सकुचन) अच्छी तरह न हो तो उन से रक्त बहुत बाहर निकलता है। और जब जरायु का सकुचन ठीक होता है तब उसका मुख सिकुड़ कर और रक्त जम कर बन्द हो जाता है। जरायु भी सिकुड़ कर बालक के सिर के आकार के बराबर होजाती है। यह फिर धीरे २ सिकुड़ कर अपने साधारण आकार पर महीनों में आती है।

प्रसव की विधि (यारीति)-गर्भ जिस रीति पर प्रसव के समय उदर में रहता है उसे "उपस्थिति" (Prsentation) कहते है। इनमें जो भाग अग्र उपस्थित होकर पहिले निकलता है उसी के नाम से इसका नाम रक्खा गया है। इसके मुख्य तीन भेद हैं। मस्तक, नितम्ब और शरीर अथवा सीधा उल्टा और तिर्छा (Stood, Pelvis and transverse) इनके फिर और विभाग किये है। मस्तक उपस्थिति में बालक का सिर पहिले निकलता है। इसमे खोपड़ी, भौंह अथवा मुख पहिले बाहर आता है। नितम्ब उपस्थिति में नितम्ब, पांव अथवा घुटना पहिले दीख पड़ता है। शरीर उपस्थिति में कांधा व हाथ पहिले प्रसव होते हैं फिर सब शेषभाग निकलता है। उपरोक्त रीतियों में से बालक मस्तक की ओर से अर्थात् सीधा अधिक निकलता है। तत्पश्चात् बालक नितम्ब उप-

स्थिति में (उलटा) पैदा होता है । परन्तु शरीर उपस्थिति अर्थात तिर्छा शरीर के बल बहुत ही कम उत्पन्न होता है । जबतक प्रसव मार्ग बड़ा और बालक छोटा न हो तबतक शरीर के बल उसका उत्पन्न होना कठिन है । इसके अतिरिक्त कभी २ मिश्रित उपस्थिति भी देखने में आती है । जैसे मस्तक के साथ हाथ व पांव का निकलना । बीजक अथवा एक हाथ और एक पैर का एक साथ निकलना। प्रतिखुर-चारों हाथ पावों का एक साथ निकलना इत्यादि । कभी २ नाल डोरा (Cord) ही पहिले निकल आता है उसे नाल उपस्थिति (Funic presentation) कहते हैं । कभी २ यमलगर्भ अर्थात् दो बालक अलग २। राक्षसी यमलगर्भ अर्थात दो बालक एक में जुड़े एक सिर और चार हाथ अथवा दो सिर और चार २ हाथ पांव, पीठ से मिले हुए । और विकृताकृति वाला गर्भ अर्थात् बिगड़े स्वरूप वाले गर्भ भी उपस्थित होते हैं । उपरोक्त उपस्थितियों का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है । सधारण स्त्री पुरुषो के जानने के लिए इतना ही बहुत है । परन्तु उनमें से कुछ आवश्यक बातो को केवल सूचना रूप से दर्शाये देते है । स्त्रियों को इस विषय में अधिकतर प्रकृति और वैद्य पर ही भरोसा रखना चाहिये ।

साधारण मस्तक उपस्थिति मे सिर का पिछला भाग उपस्थित होता है । इस में बालक के स्थिति अनुसार चार स्थितियां होती है । पहिले स्थिति में बालक गर्भागार के दाहिने व्यास में रहता है । उपस्थित भाग (सिर का पिछला भाग) सामने और मूलाधार के बायीं ओर रहता है । बालक की पीठ मां के उदर से सामने और बायें ओर,

और बालक का मुख और पेट मा के पीठ की ओर दाहिने तरफ रहता है। दूसरी स्थिति मे बालक का सिर गर्भागार के बायें श्याम मे रहता है। उपस्थित भाग अर्थात सिर का पिछला भाग सामने मूलाधार के दहिने तरफ रहता है। बालक की पीठ मां के उदर के सामने और दहिनी ओर और उसका मुख और पेट मां की पीठ की ओर बायें तरफ रहते हैं। तीसरी और चौथी उपस्थितियों में पहिली और दूसरी स्थितियों के विपरीति अवस्थायें होती हैं। अर्थात बालक का सिर मा के कोख मे रहता है और पीठ मां की पीठ के दायें बायें। रहती है। इस उपस्थिति में बालक के उत्पन्न होने मे ६ क्रियायें होती हैं। १ सिर का छाती पर पड़ना २ उसका नीचे उतरना ३ सिर का सीधा होना, ४ भीतर की ओर घूमना ५ दूसरी बार सिर का नीचे उतरना और पीछे तनना ६ बाहर को घूमना। पहिले सिर पेशियो के सकुचन के कारण दबाव पड़ने से छाती पर मुड़ता है और फिर नीचे गार मे उतरता है। वहा अधिक स्थान पाने से छाती से अलग हो कर सीधा हो जाता है वह फिर भीतर की ओर घूमता है, तब बालक का सिर मूलाधार के सामने हड्डी के नीचे आता है। फिर दूसरी बार दबाव के कारण नीचे उतरता और पीछे को तनता है। इस प्रकार क्रिया होते हुए बालक का सिर बाहर निकलता है और फिर बाहर को घूम जाता है। सिर मा के बाये जघा की ओर और मुख दाहिने जांघ की ओर रहता है। मस्तक के निकलते ही शरीर कधे से अटक जाता है। दहिना कधा सामने मूलाधार की हड्डी पर लगजाता है और बाया कधा धीरे २ बाहर निकलता है।

इसके निकलते ही दूसरा कंधा निकलता है और फिर कुल शरीर निकल पड़ता है । दूसरे स्थितियो मे भी ऐसी ही क्रियायें होती हैं । परन्तु तीसरी और चौथी स्थितियों में बालक का सिर पीछे की ओर रहने के कारण उनमें सिर का छाती पर अधिक झुकाव होता है । और फिर सिर आगे को घूमकर दूसरी और पहिली स्थितिओं में पलट जाता है। तब फिर उन्हीं के अनुसार क्रिया हो कर बालक उत्पन्न होता है । एवम् मस्तक और नितम्ब के अन्य उपस्थितियों में भी उपरोक्त क्रियायें न्यूनाधिक हो कर बालक उत्पन्न होता है । इन सब उपस्थितियो को पाठक पाठिका बालक के उपस्थित भाग से पहिचान सकते है । इन सब का वर्णन न करके थोड़ी सी आवश्यक बातों का सूचना रूप से उपाय बताते है । जिनको स्त्री तथा दाई के लिये जानना जरूरी है । परन्तु इस पर साधारण स्त्रियों को भरोसा न कर योग्य वैद्य और दाई का आसरा करना चाहिये । योनिद्वार से हाथ डाल कर, उंगलियो से टटोलकर परीक्षा करने से उपरोक्त स्थितियों का बोध हो जाता है । अत एव मस्तक और नितम्ब उपस्थितिओं में प्रकृति पर ही अधिक भरोसा रखना चाहिये । परन्तु जब देखें कि मस्तक उपस्थिति में सिर और ग्रीवा तना है । और प्रसव में अतिकाल होता है, तो सिर के पिछले भाग को पकड़ कर नीचे खींचै और ललाट को उंगलियो से उपर चढ़ावे । जब देखे कि बालक तिरछा पड़ा है तो उसमें योग्य प्रसव कर्ता की सहायता लेना सर्वदा उत्तम है । इस अवस्था में बालक का उत्पन्न होना कठिन है । इस मे भ्रमण क्रिया [Turning घूमना] करना

अति अवश्यक है। भ्रमण क्रिया मे शारीरक उपस्थिति को (घूमाकर) बदलकर मस्तक और नितम्ब उपस्थितियों मे पलट देते हैं। इस कार्य के लिये एक हाथ योनि में प्रवेशकर बालक के नितम्बों को स्थिति के अनुसार ऊपर चढ़ावे और दूसरे हाथ से बालक के सिर को उदर के ऊपर से दबाकर गर्भ गह्वर की ओर नीचे करे। अथवा दोनो हाथों को योनि मे प्रवेश कर एक से नितम्बो को धीरे २ ऊपर सरकावे और दूसरे से कंधे को दाहिने या बायें की ओर स्थिति अनुसार धीरे २ सरकावे, जिससे कंधा योनिद्वार से अलग हो कर मस्तक उपस्थिति हो जाय यदि बालक इस ओर न सरके तो फिर इसके विपरीत करे अर्थात् कंधे को चढ़ावे और नितम्बों को नीचे लावे कि बालक शरीर उपस्थिति मे नितम्ब उपस्थिति में आजावे तब प्रकृतिस्वय प्रयत्न कर बालक को सुगमता से उत्पन्न करती है। भ्रमण क्रिया को योनि सकुचन समय मे (वेदना) न करे। बरन वेदना के मध्यावस्था मे करना चाहिये। तब सफलता प्राप्त हो सकती है। इसको कोई भी अनुभवी धात्री कर सकती है। परन्तु इस के करने मे विलम्ब नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसका सुफल होना प्रथम ही अवस्था मे सम्भव है, नहीं तो फिर दुस्साध्य हो जाता है।

एवम् हाथ पांव या नाल के निकलने पर इनको खींचना बहुत ही हानिकारक है। इनमे हाथ व नाल को तो कभी भूलसे भी न खींचना चाहिये। परन्तु पाव के निकलने पर उस उपस्थिति अवस्था का ज्ञान प्राप्तकर अर्थात् बालक किस उपस्थिति मे है यह जान कर, यदि पाव सीधा और बालक

नितम्ब उपस्थिति में है तो खींचने से लाभ होता है। परंतु ज़ोर से खींचने से धड़ के उखड़ने तथा अलग हो जाने का भय है हाथ या नाल के उपस्थित होने पर उन्हें योनि के भीतर कर मस्तक को योनि द्वार पर लाना चाहिये। नाल को ऊपर न चढ़ा देने से बालक का मस्तक निकलते समय उस का दबाव नाल पर पड़ता है तब बालक का रुधिर सञ्चालन बन्द हो जाता है और बालक का गला घुटकर उसकी मृत्यु होने का भय रहता है। एक पाव और एक हाथ के उपस्थित होने पर, हाथ को भीतर और पैर को सीधा कर खींचना चाहिये, नहीं तो परिधि उपस्थिति अर्थात् तीछे उपस्थिति से बालक के उपस्थि हो जाने का भय है। यह फिर असाध्य हो जाता है।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त प्रसव कराने में अनेक शस्त्रों की आवश्यकता होती है। इससे स्त्रियों को घबड़ाना न चाहिये। बहुधा शङ्कु का अधिक प्रयोग किया जाता है। जब बालक प्रसव में रुक जाता है और परीक्षा से प्रसव मार्ग में कोई ऐसी रुकावट न मालूम हो जिससे बालक उत्पन्न न हो सके तब उसके (बालक) करोटी में शङ्कु लगाकर पहिले नीचे और फिर नीचे और ऊपर की ओर शङ्कु को झुकाते हुए खींचना चाहिये। इससे गर्भमार्ग कुछ तंग होने पर भी बालक निकल आता है। परन्तु जब बालक किसी तरह से निकलता न दिखाई दे तब मा के बचाव के लिये उसको शस्त्र से खण्ड २ कर बाहर निकालते हैं। और जब मां बालक उत्पन्न होने के पूर्व मरजाती है और बालक पेट में जीता है। तब उसे मां के उदर को शस्त्र

द्वारा चीर कर निकालते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन कार्यों को सफलता पूर्वक करने के लिये योग्य वैद्य की बड़ी आवश्यकता है।

साधारण-प्राकृतिक प्रसव का प्रबंध-प्रथम अवस्था उपरोक्त उपस्थितिओं का थोड़ा बहुत ज्ञान होने के पश्चात् स्त्री पुरुष तथा दाई को उचित है कि प्रसव प्रारंभ होते ही गर्भवती को प्रसव गृह मे प्रवेश करावें। इसके लिये स्त्रियों को चाहिये कि वे एक सप्ताह पूर्व से ही सावधान हो अपने अन्य गृह कार्यों का तथा अपनी प्रसवावस्था के लिये उचित प्रबंध कर लें। गृह उपरोक्त वर्णन के अनुसार होना चाहिये और उसे समय के कुछ काल पूर्वमेही कहे अनुसार स्वच्छ तथा देवता, वीर और विद्वानों के सुन्दर चित्रों से तथा अन्य आवश्यक बताये हुए पदार्थों से सुसज्जित करना चाहिये। खाट, कपड़े तथा अन्य बताये हुये उपयोगी पदार्थों को कहे अनुसार स्वच्छ कर लेना उचित है। वेदना प्रारंभ होते ही स्त्री अपने शरीर को स्वच्छ कर मलिन कपड़ा उतार, स्वच्छ (किया हुआ) वस्त्र पहिने। अधिक कपड़े कुर्ती, चोली, कमर के जेवर करधनी-आदि को उतार डाले, इनसे प्रसव में रूकावट का भय है। बहुत बड़ी धोती में भी बालक के अचानक उत्पन्न होने पर उसमें फंस कर गला घुटने का डर रहता है। गर्भिणी के लिये इस अवस्था में टहलना, फिरना, उकरू व खटिया आदि के सहारे बैठना लाभदायक है। इस से बालक के सिर को नीचे उतरने मे सुगमता होती है। अतएव सोना मना है। परतु जब स्त्री वेदना से बेदम हो जाय और प्रसव में कोई सफलता

प्रतीत न हो तो कुछ देर (आराम से) सोलेना चाहिये । इससे शरीर की शिथिलता दूर होकर चैतन्यता आती है । और वेदना फिर तीव्रता से प्रारभ होती है । कई आर्य आचार्यों ने इस अवस्था मे मूसल से धान कूटने को कहा है । और किसी २ ने इसको मना भी किया है । गर्भिणी के लिये इतना परिश्रम करना अयोग्य है । क्योंकि इससे स्त्री के थकजानेपर प्रसव के द्वितीयावस्था मे रूकावट का भय है । दाई तथा वैद्य को इस अवस्था मे सावधानता से जरायु मुख के विस्तीर्ण होने की प्रतिक्षा करना और स्त्री को अनेक उत्तम बातो का वृत्तान्त तथा उत्तम बालक होने की सभावना से हृदय को प्रसन्न रखना चाहिये । इससे वेदना कम मालूम पडेगी। वैद्य के उपस्थित रहने पर दाई तथा अन्य स्त्रियों को उसके आज्ञानुसार कार्य करना चाहिये । बहु प्रसूता को पूर्व प्रसव का ज्ञान प्राप्त करना वैद्य को उचित है । बाहर भीतर स्वस्छ रीति से परीक्षा करके बालक का आकार जरायु मुख और योनि मार्ग की अवस्था तथा बालक के उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना वैद्य व दाई को आवश्यक है । इससे वे उन उपायों को जो समयानुकूल आवश्यक जान पड़े कर सकेंगे । तथा वाह्य क्रिया सुगम अथवा कष्ट साध्य है जान ले और उसके उपाय के लिये तैय्यार हो जाय । परीक्षा के लिये स्त्री को बांये करवट पांव को पेटपर मोड़कर लेटना चाहिये । नितम्ब खाट के दाहिने किनारे को हो और सिर और कंधा नितम्बों से कुछ नीचा होना चाहिये । वैद्य को खाट के दाहिने ओर बैठना चाहिये। परीक्षा करने के निमित्त हाथो के नाखून को कटवा कर पहिले उन्हें गर्म जल और

साबुन से अच्छी तरह स्वच्छ करना चाहिये। पश्चात् तार-पीन का तेल मलकर परक्लोराईड धावन (एक भाग द्रव और सहस्र भाग पानी) से धोवे तब फिर स्वच्छ तिली का तेल अथवा उत्तम ग्लीसरिन (Glycerine) हाथों में लगाकर वेदना के अन्तरगतसमय में हाथ को धीरे २ पीछे की ओर से योनी मुख तक पहुंचावे और वेदना के समय उसको योनी में स्थिर रक्खे। जब हाथ योनी द्वार तक पहुंच जाय तो अँगुलिओ द्वारा टटोलकर बालक का उप-स्थित भाग जांचे। उपस्थिति अवस्था की परीक्षा उदर के ऊपर भी बालक को टटोलकर कर सकते हैं। मलमूत्र का समय हो तो उनको हलके मल मूत्र प्रेरक औषधियों से (अंडी का तेल, सोरा) अथवा वस्ति (Enama) और नलि (Catheter) द्वारा निकाल दें। नहीं तो, इनसे भी प्रसव में बाधा पहुंचती है। वस्ति कर्म पिचकारी वो गुदा धावन प्रवाहिक यन्त्र का इस काम के लिये स्वच्छता पूर्वक उपयोग करना सर्वदा उत्तम है। इससे गर्म जल का सेंक लग जाने से जोड़ और रगें नर्म हो जाती और प्रसव में सहायता मिलती है। जब जरायु मुख पूर्णतया विस्तृत होजाय और परीक्षा से बालक का आकार छोटा और त्रिकागार (गर्भागार) बड़ा प्रतीत हो तो समझना चाहिये कि प्रसव शीघ्रता से होगा और यदि कुछ भी किसी में विपरीत मालूम हो तो प्रसव में देर की सम्भावना समझना चाहिये। प्रसव की बार २ परीक्षा कर उस की गति को जानना उचित है। जरायु मुख जब पूरी तरह से फैल जाय और झिल्ली न फटे तो उसे स्वच्छ नाखून से छेद कर चीर व काटदे। शस्त्र प्रयोग

करने में बालक को लगने का भय है। परन्तु जरायु मुख विस्तृत न होने के पूर्व ऐसा करने में शीघ्रता न करे। नहीं तो प्रसव मे और भी कष्ट और देरी होती है। क्योंकि जल के निकल जाने पर गर्भाशय का दवाव जरायुमुख पर अच्छी तरह नहीं पड़ता है। इसलिये उसके फैलने में असुविधा होती है। कोई इस अवस्था में गर्भवती को पेट भर यवागू (पतलापदार्थ माड़ के समान जव का बना हुआ) पिलाते हैं। परन्तु पेट को जोर से दवाना व अधिक कांखना इस अवस्था में हानिकारक है।

तृतीय अवस्था—इस अवस्था के प्रारम्भ में ही गर्भिणी को शय्या पर लेटना चाहिये। खाट उपरोक्त बताये अनुसार तनी और स्वच्छ अथवा नवीन होनी चाहिये। इस पर मामूली विस्तर बिछाकर तेल का कपड़ा बिछाना चाहिये, फिर उस पर एक उत्तम स्वच्छ चद्दर व अन्य कपड़ा बिछाना उचित है। परन्तु हमारे यहां खाट पर लेटाकर प्रसव कराने की चाल नहीं है। अतएव, उपरोक्त रीति से पृथ्वी पर ही कोमल बिछौना करना चाहिये फिर सहायक स्त्रियों व खाट के सहारे उकरू बैठकर अथवा नितम्बोंके नीचे स्वच्छ कपड़ों का गद्दा व मचिया बनाकर रखना फिर सहायक स्त्रियों के सहारे पांव फैलाकर बैठाना (आराम कुर्सी पर लेटने के समान बैठाना) और फिर प्रसव कराना चाहिये। परन्तु हमारे आचार्यों ने भी लेटकर प्रसव कराना ही उत्तम कहा है। क्योंकि बालक के अचानक पृथ्वीपर गिरने से उसे चोट पहुचने का भय रहता है। वेदना में कुछ कमी मालूम होतो उसे सहायता पहुंचाने

का प्रयत्न करना चाहिये। पेटको मलना अथवा उसे दोनों हाथों से दबाना चाहिये। यदि यह गर्भिणी से स्वतः न हो सके तो इसे अन्य सहायक स्त्रियों को करना चाहिये। गर्भवती को श्वास रोक कर तथा खाट को पकड़ कर जोर से कांखना चाहिये। अथवा पहिले बताई हुई रीति के अनुसार शय्यापर लेटकर हाथ पांव को खाट के सिरहाने व पैताने अड़ाकर श्वास रोकना चाहिये। ऐसा करने से पेट दबने के कारण बालक गर्भगह्वर से नीचे उतरता है। और प्रकृति के कार्य मे सहायता पहुंचती है। पेटको दबाने के लिये उदर और पेड़ू में चौड़ा कपड़ा फैलाकर लपेटने के पश्चात् दोनो सिरों को आवश्यकता अनुसार तानना चाहिये। इससे बालक उत्पन्न होजाने पर जरायु संकुचन से सहायता मिलती है। क्लोरोफार्म का प्रयोग इस अवस्था में जब प्रसव में देरी हो अथवा वेदना का दुख असह्य हो तो उत्तम है। इससे वेदना मे कोई रुकावट न होकर सहायता मिलती और वेदना का दुख भी मालूम नहीं पड़ता है। क्लोरेलहाइड्रेन का भी उपयोग इस अवस्था में करते हैं। मात्रा तीस बूंद देना चाहिये। इससे कुछ समय के लिये नींद आजाने से वेदना तीव्रता से फिर प्रारंभ होती है और समों का तनाव ढीला पड़ने से प्रसव में शीघ्रता होती है। यदि मस्तक के साथ जरायु का कोई भाग नीचे उतरे तो उसे वेदना के प्रभाव काल में ऊपर चढ़ा देना चाहिये। मूलाधार के फटने का भय हो तो उसे स्वच्छ गर्म जल में कपड़ा भिगाकर सेकना तथा उसे गुदामें उंगली डालकर सिरको ओर आगे को खींचे और अंगूठे से बालक के मस्तक

को संभाले । जब इससे लाभ होता हुआ न देखे तो उसके दोनों ओर चीर लगाते हैं । इसके फटने पर उसे चांदी के तार से सीते हैं । जब बालक का सिर बाहर निकलने लगे तब उसे दाहिने हाथ से संभाले और बाये हाथ से जरायु को उदर के ऊपर से दबाता रहे । जिससे जरायु में सकुचन होता रहे और बालक के शरीरप्रसव में सुगमता हो । कभी २ सिर निकलने में देर लगती है । यह बहुधा सिरके बड़ा होने, त्रिकागार के तंग होने, जरायु सकोचन यथोचित न होने, गर्भाशय व योनि में अर्बुद व ग्रंथि का होना, जुड़ैले बालक का उत्पन्न होना, सिरके साथ, हाथ, पांवका आना इत्यादि कारण हैं । इनमें वैद्य को जैसा उचित समझ पड़े वैसा उपाय करे । शकु तथा शस्त्र प्रयोग जो आ-वश्यक हो उसे काम में लावे । कभी २ नाल गले में फस जाकर सिर के साथ निकल आता है । इसे थोड़ा खींचकर सिरसे निकाल देना चाहिये । क्योंकि शरीर प्रसव होते समय नाल पर तनाव पड़ने से उसके टूटने का भय है । सिर निकल आने पर शरीर के निकलने मे देरी लगे और बालक का मुख पीला होने लगे तो योनि में हांथ डालकर पीछे के कधो को नीचे खींचना चाहिये । इससे शरीर शीघ्र बाहर निकल आवेगा । जब किसी तरह से शरीर न निकले तो शास्त्र प्रयोग करना पड़ता है इसमें योग्य वैद्य की आवश्यकता है ।

बालक उत्पन्न हो जाने पर उसका मुख कंठ और नेत्र स्वच्छ कोमल कपड़े से पोछना चाहिये । तत पश्चात उसके नाल को जो जरायु से लगा रहता है और जिसके द्वारा

बालक अभी तक गर्भाशय में श्वास लेता और पोषण पाता था, नाड़ी गति बंद होजाने पर, काटना चाहिये। इसके लिये हाथों को स्वच्छ कर नाल में नाभी से दो इंच या ३ अंगुल छोड़कर स्वच्छ रेशम के डोरे या पतले तागे से एक गांठ लगावे और दूसरी गांठ पहिली गांठ से दो इंच ऊपर लगावे और फिर दोनों गांठों के बीच में स्वच्छ भोंथली कैंची से काट दे। तब बालक मा से अलग होकर अपने फुस फुस द्वारा श्वास लेने लगता है। परन्तु इसकार्य में जल्दी नकरे, जब तक कि बालक न रोवे, अथवा आमरवेवर बाहर बालक के साथ ही न निकल आवे, अथवा नस का रक्त संचालन बंद न होजाय। काटने के पश्चात उसमें आइडोफार्म छिड़क कर और स्वच्छ नरम कपड़ा लगाकर बांध दे। फिर इसको चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster) से पेट पर चिपका दे। तब उसे जाड़ा हो तो स्वच्छ गर्म व कोमल कपड़ों में और गर्मी के दिनों में मामूली स्वच्छ कपड़े में लपेट कर खटोले पर लेटा दे। पर कहीं २ चमारिन के आने में देरी होने पर अथवा साधारण ही बालक के ऊपर की चिकनी झिल्ली रक्त आदि स्वच्छ करने के लिये गर्म राख में लेटाने की चाल है। इससे जाड़े के दिनों में शीत लगने तथा अन्य दिनों में राख श्वास में जाने का भय रहता है। यद्यपि ताजी गर्म राख स्वच्छ होती है परन्तु पुरानी व ठंढीराख अति मलीन और हानि कारक है इस का कदापि प्रयोग न करना चाहिये।

इस अवस्था में यदि कमर में अधिक पीड़ा अथवा हाथ पांव में ऐंठन और कम्प होतो कमर को दब-

धाना और हाथ पाव को मलवाना चाहिये। कभी २ पीड़ा के उत्तेजना के कारण थोड़ा आराम तथा नींद की आवश्यकता होती है। स्त्रियों को पीड़ा तथा प्रसव मे देर लगने से घबराना न चाहिये। यह बहुधा २४ घंटे तक होता है। परन्तु इससे कोई हानि नहीं होती है। कभी २ तो मूढ़ गर्भ मे ३६ व ४८ घंटे लग जाते है, और कभी २ बहु प्रसूता को बिलकुल वेदना मालूम नहीं पड़ती। यहां तक कि कभी बालक सोते, मल त्याग करते तथा रास्ता चलते हो जाता है और उसके बाहर निकल आने पर उन्हें प्रसव का ज्ञान होता है।

इस अवस्था में प्रसव के उत्तेजना के लिये पिलाने की औषधि एकसट्रेक्ट अरगट लीक्युड (Extract Ergot Liquid) का प्रयोग करना अच्छा नहीं है। जब तक यह न जानले कि प्रसव मे किस हेतु बिलम्ब हो रहा है तब तक इस का उपयोग कदापि न करे। यदि त्रिकगार छोटा, बेडौल या कूबड़ है, अथवा योनि भाग मे ग्रथि है, अथवा बालक वक्रउपस्थिति में है तो ऐसी अवस्था में प्रसव प्रेरक औषधियों से बालक कदापि नहीं निकल सकता है। वरन पेशियों में अधिक सकुचन होने से बालक तथा माता दोनो की मृत्यु का भय है। परन्तु जब योनि मार्ग में कोई रूकावट नहीं है तब अन्त समय मे जब और दूसरे किसी उपरोक्त उपायों से प्रसव न हो तो उपरोक्त प्रसव प्रेरक औषधि को दे सकते हैं। स्थानिक उपाय योनि में तेल लगाना। काले सांप के केचुल का धुआं देना तथा अन्य औषधियों का योनि मे लेप करना जो हमारे आर्य आचार्यो ने लिखा है कर सकते

हैं। परन्तु इन में भी उपरोक्त स्थिति का विचार अवश्य करना चाहिये और अणुजन्तु की स्वच्छता का विशेष ध्यान रहे।

तृतीयावस्था—बालक उत्पन्न हो जाने के पश्चात कभी २ स्त्रियां असह्य वेदना के कारण अचेत हो जाती है। उनके सब अङ्ग ढीले पड़ जाते है। इस कारण वेदना (जरायु का सकुचन) थोड़े समय के लिये बन्द हो जाता है जब तक प्रसूता अपनी शक्ति को धीरे २ फिर से प्राप्त करती है, तब तक दाई को बालक की ओर ध्यान देना चाहिये। परन्तु मा के उदर को किसी अन्य व्यक्ति को हाथो से दबाये रखना चाहिये जिससे जरायु विस्तृत न होने पावे। बालक रोवे तो समझना चाहिये कि सब ठीक है। अर्थात् उसके जीवन श्वास का प्रारभ हो गया; और यदि चुप चाप पड़ा रहे तो उसके पीठ पर धीरे २ थपथपावे अथवा ठढे पानी का छींटा उसे चैतन्य करने के लिये मुख पर मारे और श्वास यथोचित् लेने के लिये उताना सुलावे। हमारे यहा इसके निमित्त कांसे की थाली बजाते तथा बदूक छोड़ते है। यदि इन उपायो से बालक को होश न आवे तो कृत्रिम श्वास क्रिया (Artificial respiration) जिसका वर्णन आगे किया जायगा, करे। जब बालक चैतन्य हो जाय तो उसके शरीर को साबुन और गर्मजल अथवा तेल व दूध से धो पोछ तथा कठ के कफ इत्यादि को उँगली व नर्म और स्वच्छ कपड़े से निकाल कर, ऋतु के अनुसार कपड़े से लपेट कर शय्या पर सुलाना या दाई (अन्य स्त्री) के गोद मे दे देना चाहिये। इस समय में स्त्री को चेत हो आता है और पीड़ा फिर से आरम्भ हो

जाती है । इससे आमरवेवर जरायु को छोडकर बाहर निकल आता है इसके निकलने में आधा या पौन घंटे से अधिक विलम्ब हो तो उदर पर वाले हाथसे उदर और जरायु को मले व दबावे तब आमरवेवर जराय को छोड़ योनि से बाहर निकल आवेगा परन्तु नाल को खींच कर इसे निकालने का प्रयत्न न करना चाहिये । ऐसा करने से रक्त श्राव होने का अधिक भय है और जरायु में आमरवेवर के छोटे २ टुकड़े रह जाते हैं । तब फिर से बेदना होती है और रक्त श्राव अधिक होता है। आमरवेवर के टुकड़े जरायु के भीतर रहने से जरायु में सूजन और ज्वर होने का भय रहता है । इनको योनि में हाथ डालकर स्वच्छ अगुली से धीरे २ छोड़ाना चाहिये । जोड़ीले बालक उत्पन्न होने पर जब तक दोनों बालक बाहर न निकल आवें तब तक उनमें से किसी के आमरवेवर को निकालने का प्रयत्न न करना चाहिये इससे रक्त श्राव अधिक होने तथा मा के अचेत होने से बालक तथा मा दोनो केमृत्यु होने का भय है ।आमर-वेवर के निकल आने पर उसे शीघ्र गाड या जला देना चाहिये । क्योंकि इसको देर तक सूतिका गृह में रहने से उससे दुर्गंधि निकलने लगती है और वायु को बिगाड़ती है । हमारे यहा स्त्रियां हांड़ी में रखकर उसी घर में गाड़देती हैं, परन्तु बाहर अधिक गहरा गड्ढा कर गाड़ना उत्तम होगा । इस अवस्था के प्रारंभ मे जरायुसकुचन, तथा रक्तश्राव तथा पीड़ा के लिये अरगट का अर्क (Extract Ergot Liqudi) आधा तोला और अर्क अफीम (Tincture opii) बीस बूंद आधी छटांक पानी के साथ देना लाभदायक है । योनि को, गर्मजल में

कौडिज फ्लूइड अथवा लाईसोल चार आना भर एक बोतल पानी मे डालकर वस्ति कर्म (पिचकारी व धावन प्रवाहक यंत्र द्वारा) द्वारा धोना चाहिए। क्योंकि जरायु के स्वच्छ रहने पर उस में सड़न व ज्वर होने का कम भय रहता है। परन्तु स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिये। यंत्र हाथ आदि को स्वच्छ कर प्रयोग करना चाहिये। मां को विश्राम के लिये छोड़ने के पूर्व, एक उत्तम कोमल कपड़े (मलमल) की पट्टी (१८ इंच चौड़ी और ३½ फुट लम्बी) से उदर को कसकर बांधना चाहिये और एक दूसरी लंगोटी योनि द्वार पर गद्दी रक्तस्राव के लिये लगाकर बांधना चाहिये। उदर पट्टी की गांठ व सीवन न बहुत कड़ी न बहुत ढीली होना चाहिये। परन्तु सुखदायक होना योग्य है। इसके बांधने के लिये सुरक्षित आलपीन (Safty pins) उत्तम है। यदि ये नहो तो सुई डोरा से सी देना चाहिये। ढीले होने पर फिर से खींच कर बांधना उचित है। और इसे एक सप्ताह तक अवश्य रखना चाहिये। इससे उदर-सुडौल और जरायु सकुचित रहती है और रक्तस्राव का भय कम रहता है। बनी बनाई उत्तम प्रकार की पट्टीयां भी इस कार्य के लिये मिलती हैं। इस कार्य के पूर्व प्रसूता के शरीर व सब कपड़े जो रक्त से भर गये हों स्वच्छ करना व बदल देना चाहिये। परन्तु इस कार्य्य के लिए उठाना बैठाना न चाहिए वरन लेटे २ ही उस को साधना चाहिए। शय्या के एक ओर धीरे से हटा कर दूसरे कपड़े बिछा देना चाहिये। पर जब प्रसव पृथ्वी पर कराया है तब प्रसूता को स्वच्छ कर पट्टी बांधने के पश्चात् धीरे से उसाना उठाकर शय्या पर लेटाना चाहिये। और समयानुसार

यथोचित वस्त्र ओढ़ाकर इच्छा पूर्वक सोने देना चाहिये। कभी २ इस अवस्था में वेदना के कष्ट को तथा शिथिलता को दूर करने के लिये सुरा (मद्य) पिलाते व इस में प्रसूता को बैठाते हैं। परन्तु उत्तेजक पदार्थों के सेवन से रक्त स्राव-होने का भय रहता है।

विलम्बित प्रसव-प्रसव में देर किसी अवस्था में हो सकती है। परन्तु द्वितीया अवस्था में होने से माता तथा बालक दोनों को हानिकारक है। प्रथमावस्था में झिल्ली में जल रहने के कारण जरायु सकुचन से कोई हानि नहीं होती। परन्तु जब यह जल द्वितीयावस्था में निकल जाता है तब सकुचन का दबाव पड़ने से बालक तथा मा दोनों को हानि होती है। बालक का दम घुटने और मा के पेशी तन्तुओं के फटने का भय रहता है। प्रसव से देरी, बालक का आकार बड़ा होने, गर्भागार छोटा तथा वेडौल होने, सकुचन क्रिया यथोचित न होने, प्रसव मार्ग में ग्रंथि के कारण रुकावट व तंग रास्ता होने आदि कारणों से होती है। प्रथम अवस्था में मलमूत्र के सचय होने से भी प्रसव में विलम्ब होता है। पर जब परीक्षा से विलम्ब का विशेष कारण न मालूम होय और मार्ग में कोई रुकावट नहीं जान पड़े तो देर होने से घबड़ाना न चाहिये। कदाचित् प्रकृति को इस में कुछ लाभ जंचता तथा सुगमता हो। बिना वैद्य के आज्ञा बार २ कांखना उचित नहीं। इस में योग्य वैद्य की सहायता लेनी चाहिये। परन्तु साधारण अवस्था में वैद्य के न होने पर इन उपायों को काम में लावे। मल-मूत्र का वस्तिकर्म व नलीद्वारा त्याग कराना, पेड़ू को गर्म

जल मे सेकना, अथवा गर्भवती को गर्मजल में बैठाना, पेट को धीरे २ मलना और नीचे दबाना, क्लोरोहाइड्रेट और क्लोरोफ़ार्म का प्रयोग में लाना इत्यादि उपाय लाभदायक है। थकावट व प्यास लगने पर गर्म दूध व शक्कर का शरबत पिलाना भी गुणकारी है।

प्रसव मे देर लगने से बालक की मृत्यु का भय रहता है। जब ऐसा समय निकट आता है तब माता के उदर में फड़फड़ाहट और बालक के हृदय की धड़कन में भिन्नता व शीघ्रता पाई जाती है। जब यह सुनाई न दे और बंद हो जाय तो समझना चाहिये कि बालक की मृत्यु हो गई। तब माता की कान्ति क्षीण हो कर उसे आलस्य, सुस्ती और उदर मे बोझ मालूम होता है। इसमे अधिक देर होने से पेट फूलना और मुख या योनि मे दुर्गंध निकलने लगती है। कभी २ बालक मरने पर एक दो सप्ताह के पश्चात आपसे प्रसव होकर निकल आता है। परन्तु इसके निकालने का उपाय जहां तक होसके शीघ्र करना चाहिये।

कभी २ नितम्ब उपस्थिति में शरिर के निकल आने पर हाथ ऊपर सिर की ओर चढ़ जाते हैं और बालक के उत्पन्न होने में देरी लगती है। इस दशा में शरीर को पकड़ कर सिर निकालने के लिये सीधा खींचना हानिकारक है। पहिले हाथों को घुमा व मोड़ कर नीचे लाना चाहिये। इस कार्य के लिये दाहिने हाथ की एक अंगुली योनि में डाल कर बालक के पीठ की ओर से उसके कंधे के ऊपर लेजाय, फिर धीरे से उसके केहुनी के मोड़ में फसाकर छाती की ओर घुमाता हुआ नीचे खींच लावे। जब इस प्रकार

क्रिया करने से एक हाथ निकल आवे तो दूसरा भी इसी तरह निकाले। हाथों को सीधा खींच कर निकालने से उनके उखड़ने अथवा टूटने का भय है। जब हाथ निकल आवें तो नाल को भी बाहर खींच लेना चाहिये, जिससे सिर का दबाव उस पर न पड़े। ठुड्डी के रुकावट के बचाव के लिये सिर के पिछले भाग में अंगुली से सामने को दबाव पहुंचाने और बालक के शरीर को ऊपर और माता के उदर के ओर झुकाने से लाभ होता है। और सिर आसानी से निकल आता है। परन्तु योग्य वैद्य की सहायता लेना सदैव उत्तम है।

मस्तक उपस्थिति से जब सिर बड़ा और गर्भागार छोटा होता है तब सिर का निकालना कठिन होता है। इस अवस्था में शंकु प्रयोग करना पड़ता है। इससे (शंकु) कोई हानि नहीं है। यह एक प्रकार का कृत्रिम हाथ है। हाथो से इतनी दृढ़ता के साथ बालक को पकड़कर निकाल नहीं सकते जैसे कि शंकु से काम ले सकते हैं। अनेक प्रकार के शंकु मिलते हैं। परन्तु सब से "सिम्पसन" लम्बी शंकु उत्तम है (Simpsons long forceps)। इसके दोनो फण (फल) अलग २ होते है। इनको मिला देने से शंकु बन जाता है। इसकी बाहरी गोलाई त्रिकागार के अकार (गोलाई) के समान और भीतरी गोलाई बालक के सिर के अकार की होती है। इस कारण न माता को ही दुःख होता है और न बालक के सिर में आघात पहुंचने का भय है। प्रवेश करने के लिये पहिले इन्हें स्वच्छ कर स्वच्छ तेल अथवा ग्लिसरीन लगाते है। फिर बाये अर्थात् नीचे वाले फण को कलम के समान स्वच्छ हाथों से पकड़ कर बायें हाथ

को दो अंगुलियों (मध्या और तर्जनी) के सहारे से धीरे २ योनि के भीतर नीचे और बायें ओर प्रवेश करते हैं। ज्यों २ शंकु का सिरा भीतर और ऊपर जाता है त्यों २ उसकी मूठ नीची होती जाती है, यहां तक कि जब यह (सिर तक) स्थान पर पहुंच जाती है तो मूठ जांघ के सीध मे हो जाती है। तब इसे किसी सहायक मनुष्य को स्थान पर पकड़े रहने के लिये देदेना चाहिये । अब दूसरे फण को (दाहिना व ऊपर वाला) पहिले वाले के विपरीत पकड़ कर अर्थात् मूठ नीचे को कर शंकु ऊपर की ओर धीरे २ योनि में प्रवेश करे। जब यह बालक के सिर तक पहुच जाता है तब उसका मूठ दाहिने जंघा के बराबर पर आता है। दोनो फण बालक के कनपटी पर लग जाय तो उन्हें मिला देना चाहिये। उपरोक्त शंकु में मिलने का स्थान योनि से बाहर रहता है। इस लिये इस से योनि का कोई भाग दबता नहीं और बालक का मस्तक इस के गोल-गार में आजाता है। अच्छी तरह मिलजाने पर मूठ को पकड़ कर खींचना चाहिये। खींचने में पहिले नीचे और पीछे की ओर खींचे और फिर ज्यो २ बालक का सिर नीचे योनि में उतरता जाय त्यो २ शंकु को बाहर और ऊपर की ओर खींचता जाय और उस के मूठ को ऊपर उदर की ओर झुकाता जाय जब तक बालक का सिर बाहर न निकल आवे। सिर के निकलने पर शरीर आप ही आप शीघ्र निकल आता है। इस में शंकु का प्रयोग नहीं होता है। शंकु से बालक को खींचने के अतिरिक्त, सिर के दबाने तथा उसके उठाने का भी काम होता है। इसके द्वारा बालक को त्रिकागार के कुछ छोटे

होने पर भी निकाल सकते है। इस कार्य में क्लोरोफार्म को सुघाने की आवश्यकता होती है। कभी २ क्लोरोफार्म के सुघाने से ही विलम्बित्त (Prolonged) प्रसव पेशियों के तनाव ढीले पड़ने से सुगमता से हो जाता है।

रक्त श्राव पर प्रसव काल मे विशेष ध्यान देना चाहिये। प्रथमावस्था में हो तो यह कभी २ मलमूत्र के त्याग करने से बद हो जाता है। गर्म जल से वस्तिकर्म करना भी लाभदायक है। कमर को सिर से आधा फुट ऊचा रखना और विश्राम करना सब अवस्थाओ में उत्तम है। जब रूधिर तीसरे अवस्था अथवा उसके पश्चात् निकलता है तब यह बहुधा जरायु सकुचन यथोचित न होने अथवा उसमें जरायु के टुकड़े रह जाने से होता है। जरायु को हाथो से दबाना व मलना, गर्म जल से योनि को धावन करना अथवा उन्हे, टुकडो को स्वच्छ अगुली से निकालना, और अर्गट औषधि का आधा तोला तीन २ घटे में देना, और बालक को स्तनो से लगाना जरायु के सकुचन होने तथा रक्तश्राव बद करने के लिये गुणकारी हैं। यदि प्रसूता अचेत हो जाय और रक्त श्राव होता हो तो उसे थोड़ी देर तक उसी अवस्था में पड़ी रहने देना चाहिये। इससे रक्त श्राव आप से बंद हो जाता है। परन्तु उत्तेजक औषधियों तथा शराब का बेहोशी दूर करने के लिये देना अनुचित है। इससे श्राव फिर से प्रारभ होने का भय है।

चतुर्थ-प्रस्ताव ।

प्रसूतावस्था ।

स्त्रियां प्राय. प्रसव के अन्त होते ही वेदना तथा परिश्रम के कारण शिथिल और अचेत हो जाती हैं । नींद आती और विश्राम करने का जी चाहता है । इस लिये उन्हें थोड़ी देर तक प्रसव के पश्चात् आराम से लेटा देना चाहिये। परन्तु जरायु को हाथ से पकड़े और धीरे २ मलते रहना चाहिये । जब आमरवेवर निकल जाय और रक्त स्राव बंद हो जाय तब प्रसूता के शरीर को स्वच्छ कर और उसके बिस्तर तथा पहिनने के कपड़े बदल कर उसे शय्या पर चुपचाप लेटने देना चाहिये । कपड़े बदलने व खाट पर सुलाने में प्रसूता को अधिक उठाना बैठाना न चाहिये । जब प्रसव पृथिवी पर कराया गया हो तो उसे सहायक स्त्रियों के सहायता से हाथों पर उताना उठा कर खाट अथवा पृथ्वी पर कोमल बिछौना बिछाकर धीरे से सोलाना चाहिये । परन्तु हमारे यहां इस के पूर्व दाई प्रसूता को सहायक स्त्रियो के सहायता से दीवाल से खड़ा कर विकारी रक्त तथा आमरेवेवर के टुकड़ो को निकालने के लिये उसके पेट को कुछ देर तक अच्छी तरह मलती है तब फिर खाट पर सुलाती हैं । बलवान स्त्रियों के लिये इससे कुछ हानि नहीं है जब कि जरायु का संकुचन अच्छी तरह से होता और रक्त स्राव अधिक नहीं होता है । किन्तु दुर्वल स्त्रियों के लिये इस में बहुत चौकसाई करना चाहिये । जरायु को हाथो से अच्छी तरह पकड़े रहना चाहिये. नहीं तो ढीले

होने पर भी निकाल सकते हैं। इस कार्य में क्लोरोफार्म को सुघाने की आवश्यकता होती है। कभी २ क्लोरोफार्म के सुघांने से ही विलम्बित (Prolonged) प्रसव पेशियों के तनाव ढीले पड़ने से सुगमता से हो जाता है।

रक्त श्राव पर प्रसव काल में विशेष ध्यान देना चाहिये। प्रथमावस्था मे हो तो यह कभी २ मलमूत्र के त्याग करने से बंद हो जाता है। गर्म जल से वस्तिकर्म करना भी लाभदायक है। कमर को सिर से आधा फुट ऊंचा रखना और विश्राम करना सब अवस्थाओं में उत्तम है। जब रुधिर तीसरे अवस्था अथवा उसके पश्चात् निकलता है तब यह बहुधा जरायु संकुचन यथोचित न होने अथवा उसमे जरायु के टुकड़े रह जाने से होता है। जरायु को हाथो मे दबाना व मलना, गर्म जल मे योनि को धावन करना अथवा उन्हें, टुकड़ो को स्वच्छ अंगुली से निकालना, और अर्गट औषधि का आधा तोला तीन २ घंटे में देना, और बालक को स्तनो से लगाना जरायु के संकुचन होने तथा रक्तश्राव बंद करने के लिये गुणकारी हैं। यदि प्रसूता अचेत हो जाय और रक्त श्राव होता हो तो उसे थोड़ी देर तक उसी अवस्था में पड़ी रहने देना चाहिये। इससे रक्त श्राव आप से बंद हो जाता है। परन्तु उत्तेजक औषधियो तथा शराब का बेहोशी दूर करने के लिये देना अनुचित है। इससे श्राव फिर से प्रारंभ होने का भय है।

चतुर्थ-प्रस्ताव ।

प्रसूतावस्था ।

स्त्रियां प्राय प्रसव के अन्त होते ही वेदना तथा परिश्रम के कारण शिथिल और अचेत हो जाती है। नींद आती और विश्राम करने का जी चाहता है। इस लिये उन्हें थोड़ी देर तक प्रसव के पश्चात् आराम से लेटा देना चाहिये। परन्तु जरायु को हाथ से पकड़े और धीरे २ मलते रहना चाहिये। जब आमरवेवर निकल जाय और रक्त स्राव बंद हो जाय तब प्रसूता के शरीर को स्वच्छ कर और उसके बिस्तर तथा पहिनने के कपड़े बदल कर उसे शय्या पर चुपचाप लेटने देना चाहिये। कपड़े बदलने व खाट पर सुलाने में प्रसूता को अधिक उठाना बैठाना न चाहिये। जब प्रसव पृथिवी पर कराया गया हो तो उसे सहायक स्त्रियों के सहायता से हाथों पर उताना उठा कर खाट अथवा पृथ्वी पर कोमल बिछौना बिछाकर धीरे से सोलाना चाहिये। परन्तु हमारे यहां इस के पूर्व दाई प्रसूता को सहायक स्त्रियों के सहायता से दीवाल से खड़ा कर विकारी रक्त तथा आमरेवेवर के टुकड़ो को निकालने के लिये उसके पेट को कुछ देर तक अच्छी तरह मलती हैं तब फिर खाट पर सुलाती हैं। बलवान स्त्रियों के लिये इससे कुछ हानि नहीं है जब कि जरायु का संकुचन अच्छी तरह से होता और रक्त स्राव अधिक नहीं होता है। किन्तु दुर्बल स्त्रियों के लिये इस में बहुत चौकसाई करना चाहिये। जरायु को हाथो से अच्छी तरह पकड़े रहना चाहिये, नहीं तो ढीले

होने से उसके नीचे गिरने व उलटजाने तथा रक्त स्राव अधिक होने का भय है। यद्यपि यह आमरवेवर के टूकड़ो को निकालने के लिये उत्तम है, पर इसमें सावधानता की अधिक आवश्यकता है। पाश्चिमात्य देशो में यह चाल नहीं है। वे इस कार्य के लिये धावन-प्रवाहिक यन्त्र का प्रयोग करते है। खाट पर लेटानेके पश्चात् जब रूधिर बंद होजाय और जरायु हाथों के नीचे गेंद के समान गोल और कड़ी प्रतीत होवे तब उदर और पेडू को पट्टी से कसकर बांधना चाहिये और योनी द्वार पर स्वच्छ गट्टी लगा कर लगोटी लगाना चाहिये। फिर खाट पर उताना ऋतु अनुसार रूपड़े ओढ़ाकर और खिड़की तथा द्वार बंद कर कुछ समय तक सोने देना चाहिये। मित्रो तथा सम्बन्धियोका बार २ आकर जगाना तथा उससे बात चीत करना हानिकारक है। इससे नाड़ी उत्तेजित होकर रक्त स्राव होने का भय रहता है। सोते समय में भी प्रसूता की नाड़ी व चेहरा देखते रहना चाहिये, ताकि रक्त स्राव का ज्ञान होता रहे। क्योंकि कभी कभी अचेत अवस्था में भी जरायु का यथोचित संकुचन न होने अथवा उसमें आमरवेवर के टुकड़े रह जाने से पीड़ा फिर से आरम्भ होकर रक्त स्राव होता है। कभी २ जरायु व योनि में ही रक्त जम कर रहजाता है। और बाहर कोई चिन्ह नहीं मालूम पड़ता है। इस दशा में चेहरा और हाथ पांव के नख पीले पड़ जाते है। इसलिये इनकी बार २ परीक्षा करना चाहिये और रूधिर निकलने पर उस का उपाय शीघ्र उपरोक्त रीति के अनुसार करना चाहिये।

प्रसूता को दस बारह दिन तक बैठने उठने न देना

चाहिये। जितने आराम से प्रसूता इस अवस्था में चुपचाप पड़ी रहेगी उतना ही यह उसे पीछे लाभदायक होगा। गर्भाशय प्रसव के समय १२ इञ्च लम्बा और दस बारहछटांक तौल में होता है। यह पहिले जल्दी २ सिकुड़ कर आठ दस दिन में आधे के लगभग कम हो जाता है। और फिर धीरे धीरे घटकर दो महीने के अन्त में अपने पूर्व आकार के करीब २ आजाता है। इसलिये प्रसूता के बारह दिन के पहिले उठाने बैठाने, और चलने से जरायु में बल पड़ जाता है। अथवा जगह से टल जाता और आकार में भिन्नता आजाती है, जिसमें जरायु में सूजन व पीड़ा बहुत दिनों तक बनी रहती और रक्तस्राव का भय रहता है। तीन, चार दिन तक तो उठकर बैठना भी न चाहिये। उताना लेटे रहना अति उत्तम है। धीरे २ करवट बदलकर लेटना अथवा ऊंचे तकिये के सहारे उताना थोड़ी देर तक पड़े रहना हानिकारक नहीं है। कहीं २ इसीलिये खाने पीने को कुछ नहीं देते हैं। जब चमारिन का स्नान अथवा छुट्टी हो जाय तो थोड़ा उठकर कुछ समय तक खाट पर बैठ सकते है। परन्तु, अधिक देर तक बैठे रहना अथवा एक ही करवट लेटे रहना हानिकारक है। बारहवें व तेरहवें दिन खाट से धीरे २ उतरना व थोड़ा चलना अयोग्य नहीं है। परन्तु एक महीने तक परिश्रम का काम न करना चाहिये। क्योंकि इस से जरायु के संकुचन में बाधा पहुंचती है। जिससे जरायु में सूजन-और अन्यरोग होते हैं।

किसी २ का ख्याल है कि अंग्रेजों की स्त्रियां प्रसव होते ही स्वच्छ होकर गाड़ी में बैठ हवाखाने को बाहर

निकल जाती हैं । अथवा मजदूर पेशेवाली स्त्रियां अपने कार्य में जल्द लग जाती हैं और इससे उनको कोई हानि नहीं होती है । यह निरा भ्रम है । अंग्रेजो में यह कदापि नहीं होता है । वे सुशिक्षिता होने के कारण इस अवस्था में हमारे यहां की स्त्रियों से अधिक सावधान रहती हैं । वे दस बारह दिन तक उठक र बैठती भी नहीं हैं । पड़े ही पड़े भोजन करती और मलमूत्र का त्याग करती है । गरीब जाति की स्त्रियों को प्रसग वशात् मार्ग में प्रसव हो जाने से वे कुछ दूर तक चल कर घर आती हैं । अथवा दसवे बारहवे दिन पश्चात् अपना साधारण काम करने लगती हैं । परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि उन्हें इससे कुछ हानि नहीं होती है । हानि अवश्य होती है । किसी २ के पेड़ू में पीड़ा थोड़ी बहुत सदैव हुआ करती है और अनेको में जरायु के सकुचित न होने के कारण सूजन और उससे प्रदर सदैव जारी रहता है । पर इनकी इन्द्रियां, अवयव और मास पेशियां घर में रहने वाली स्त्रियों के समान ढीली नहीं होतीं इस लिये इनकी जरायु और उदर सकुचित रहने के कारण इन्हें कुछ कम हानि होती हैं ।

स्त्रियों को प्रसूतावस्था में विश्राम, स्वच्छता, शीत और भोजन आदि का प्रबंध, ऋतु और देशानुकूल ठीक २ होना चाहिये । यद्यपि प्रत्येक देश व प्रांत की प्रणाली रीति के अनुसार भिन्न २ है परन्तु सब में मुख्य बातों का विचार एकही है । इस लिये निम्न लिखित बातों पर ध्यान देना सबको आवश्यक है । गर्भावस्था में स्त्रियों के अवयव वा इन्द्रिया अधिक काम पड़ने से शिथिल और कमज़ोर हो

जाती हैं, यह पहिले बता चुके हैं। अत एव दोषों का कोप इस अवस्था में थोड़े ही कारण से हो जाता है। इस लिये उन्हें एक दो महीने तक बड़ी सावधानी के साथ रहना चाहिये।

प्रसव में पेशियों पर तनाव पड़ने से उनमें सूजन होती है। इस लिये उन के सञ्चालन में पीड़ा मालूम होती है। अत एव मल और मूत्र के उतरने में भी कष्ट होता है। और कभी २ उतरता भी नहीं है। इसका उचित प्रबन्ध करना चाहिये। मूत्र का बार २ होना रक्त से विकारी पदार्थों के निकलने के लिये आवश्यक है। बढ़े हुए जरायु का घटाव पहिले पक्ष में शीघ्रता से होता है। प्रकृति को इसके अन-उपकारी प्रमाणुओं को निकालने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु मल मूत्र त्यागने के लिये प्रसूता को चार पांच दिन तो बिल्कुल उठाना बैठाना न चाहिये। लेटे ही लेटे पात्रों में इसका त्याग कराना चाहिये। अनेक प्रकार के पात्र इस कार्य के लिये औषधालयों में मिलते हैं। पीड़ा होने पर पेड़ू व गुदा को गर्म जल में स्वच्छ कपड़ा भिगो कर सेंकना तथा योनि व गुदा में गर्म जल का धावन प्रयोग करना चाहिये। इस से मूत्र न उतरे तो उसे नलीद्वारा (Catheter) स्वच्छ रीति से निकाले। पर कई दिनों तक जमा न होने देना चाहिये। मल त्याग के लिये अंडी का तेल देना माता तथा बालक दोनों को अच्छा है। गर्म जल का सेवन अथवा गुदा मार्ग से धावन यन्त्र का उपयोग उसे स्वच्छ करने के लिये कराना अच्छा है। पेट फूलने की अवस्था में तार्पीन का तेल गर्म जल मे मिला कर पेट को

सेंके । अथवा गुदा धावन क्रिया करे । धावन के लिये सेर या तीन पाव पानी एक बार मे उपयोग करते है । मल रुकने से अर्श रोग (बवासीर) ज़ोर करता है । इस लिये इसका भी ख्याल रखना चाहिये ।

प्रसूत वेदना-प्रसव के पश्चात अचैतन्यता तथा निद्रा आजाने के बाद घटे दो घटे में फिर से उदर में पीड़ा उत्पन्न होती और ५,६ घटे रहती है । यह बहु प्रसूताओं में बहुधा अधिक देखने में आती है । और उन स्त्रियों में जिन्हें गर्भ जल्दी २ रहता है । जल्दी २ सन्तान उत्पन्न होने से जरायु की सकोचन शक्ति कम हो जाती है । इस लिये जरायु प्रसव के बाद ढीला पड़जाता है और उससे सकोचन अच्छी तरह न होने से आमरवेवर के टुकड़े उसमें रह जाते है । इन्हें प्रकृति निकालने के लिये फिर से पेशियों में संकुचन क्रिया उत्पन्न कर प्रयत्न करती है इस से पीड़ा फिर मालूम होती है । इसे छेड़ना तथा रोकने का उपाय करना योग्य नहीं है । वरन स्त्रियो को इसे धैर्य से सहना चाहिये । जरायु जितना स्वच्छ होगा उतनी उसमें प्रसूत पीड़ा कम होगी । इसके प्रारंभ होते ही उदर के ऊपर से गर्भाशय को मलना तथ उसमे संकोचन होने के लिये अर्गट औषधि का प्रयोग करना चाहिये । पीड़ा अधिक होने पर मार्फिया (Morphia) की पिचकारी लगाना अच्छा है । अथवा पोटास ब्रोमाईड (Potass Bromide) (चारआना भर) या क्लोरोडाईन (पंद्रह बूंद) तीस बूंद अर्गट के साथ देना चाहिये ।

प्रसव के पश्चात् प्रसूतावस्था में दस बारह दिन अच्छी तरह पट्टी बाधने से शरीर सुडौल और रक्त प्रवाह का भय

नहीं रहता है। प्रसव में ग र्भागार की हड्डियां फैल जाती हैं। पट्टी बांधने से वे फिर मिल जाती हैं। जहां पट्टी बांधने की चाल नहीं है (जैसे की अमेरिका) वहां की स्त्रियों का पेट और नितम्ब बहुत फैल जाते हैं। पट्टी १८ इंच चौड़ी और डेढ़ गज लम्बी लेना चाहिये। इसको आधा लपेट कर खुला सिरा कमर और चूतड़ों के नीचे से फैलाता हुआ ऊपर लाना चाहिये। फिर लपेटे हुए भाग को पेट तक लपेट व फैला ऊपर नीचे ताम कर बांधना, सूई से सीना अथवा सुरक्षित आलपीनों से टांकना चाहिये। पट्टी नितम्बों के नीचे से कमर व पेट तक होना चाहिये। उदर में दूसरी पट्टी (उदर पट्टी) ६, ७ इंच चौड़ी बांधना अच्छा है। अनेक प्रकार की बनी बनाई पट्टियां औषधालयों में मिलती हैं। प्रसूता स्त्री का शरीर तथा कपड़े स्वच्छ रखना चाहिये बालक के उत्पन्न होते समय जो वस्त्र रूधिर से भर जाते हैं उन्हें बदल कर दूसरे स्वच्छ पहिरने को देना चाहिये। और इन्हें आवश्यकतानुसार प्रति दिन बदलना और धुलाना चाहिये। प्रसूतीगृह में इकट्ठा करना हानिकारक है। शरीर जल से पोंछ कर स्वच्छ करना चाहिये। हमारे यहां छठवें और बारहवें दिन उबटन और तेल मल कर उबाले हुये नीम के जल से स्नान कराने की चाल है। इन्हें चमारिन व नाइन का स्नान व शुद्ध दिन कहते हैं। इनमें भी उपरोक्त बातों का ध्यान रहना चाहिये। छटवें दिन उठना बैठना न चाहिये। खाट पर ही स्नान कर कपड़ा बदलना चाहिये। चमारिन व नाइन से तेल मलवाना शरीर को पुष्ट व उदर के पेशियों को सकुचित करता है। इसके लिये उठ कर बैठना

न चाहिये किन्तु लिटेही मालिश करवाना चाहिये । प्रसव के पश्चात् योनि से रुधिर का बहाव २० २२ दिन तक होता रहता है । इसे अंग्रेजी मे लोकिया (Lochia) कहते हैं । यह पहिले एक दो दिन तक केवल रक्त ही रहता है; फिर चौथे पाचवे दिन पतला और पीलाई लिये लाल रंग का निकलता है। दूसरे सप्ताह में कुछ पीलाई लिये हरा हो जाता है और कि तीसरे सप्ताह के अन्त तक बहता रहता है । इसका बहाव कभी २ किसी में अधिक दिनों तक रहता है । यह बहुधा गराय् के अच्छी तरह सकोचन न होने अथवा जल्द उठने बैठने के कारण सूजन होने से होता है । रक्त-स्राव के लिये स्त्रियां योनि के मुख पर गद्दी रख लगोटी लगाती है । गद्दियो को पहिले दो तीन दिन तक दिन मे चार पाच बार बदलना चाहिये । फिर ज्यो २ स्राव कम होता जाय त्यों २ गद्दियों की कम आवश्यकता होती है । इसमे योनि को प्रति दिन धोना चाहिये । परन्तु स्वच्छता पूर्वक क्रिया का होना अत्यावश्यक है, वरन लाभ के पलटे हानि अधिक होती है । जब स्राव मे थोड़ी भी गध आने लगे और बहाव कम हो जाय तब योनि को लाईसोल अथवा पोटास परमैंगनीस औषधियो के धावन को (चार आना भर औषधि एक बोतल स्वच्छ जल में डाल कर) औषधालय से मंगाकर शीघ्र योनि को स्वच्छता पूर्वक प्रात काल और सायंकाल धोवे । रक्त स्राव में भी धावन क्रिया करना अच्छा है । परन्तु रक्त निकलते ही चुपचाप खाट पर दो चार दिन विश्राम करना चाहिये । और माजूफल का चूर्ण या अर्गट औषधि का अर्क देना चाहिये । असावधानी होने से प्रसूति

ज्वर का भय है। सूजन हो तो गर्म जल के साथ उपरोक्त औषधियों का धावन काम में लाना चाहिये। गर्म जल में कपड़ा भिगोकर सेकना भी लाभ दायक है। उठना बैठना न चाहिये।

मलिन शस्त्र, वस्त्र, हाथ, यत्र आदि को योनि में प्रवेश भूल कर भी न करना चाहिये। इनसे अनेक रोग उत्पन्न होने का भय है। योनि में मलिनता के कारण छूत लगने, रक्त के लोथड़े और आमरक्षेवर के टुकड़े रह जाने से तथा मलिन हाथ व वस्त्रके प्रयोग से रोगोत्पादक अणुजन्तु योनि और जरायु में प्रवेश कर रक्त स्राव को बन्द करते और उन में सड़न उत्पन्न करते हैं। तब ज्वर आता है। इसे प्रसूति ज्वर (Puerperal fever or septicemia) कहते हैं। इसमें दूषित रुधिर जो खुले मुखवाली धमनियों से योनि द्वारा बहना चाहिये वह रक्त में प्रवेश कर उसे विषैला कर देता है। इससे साधारण तथा सन्निपात ज्वर होता है। ज्वर का होना, स्राव का कम या बंद अथवा उससे दुर्गंधि का होना है। सिर में पीड़ा ज्वर का तेज अथवा बेहोशी व वायु का होना इत्यादि लक्षण होते हैं। यह बहुधा असाध्य होता है। बचाव के लिये योनि को पहिले से ही प्रति दिन व आवश्यकतानुसार सुबह शाम कौंडिज फ्लूइड (पोटास परमेगनस) अथवा अन्य धावन से स्वच्छ करना चाहिये। प्रवाह (रक्त) कम होते ही पीपर, पिपरामूल, गजपीपर, चव्य और सोंठ का चूर्ण पुराने गुड़ और गर्मजल के साथ तीन चार दिन तक पीवे।

शीत के बचाव के लिये गर्म (ऊनी) कपड़ा, अग्नि

ओर गर्म जल का प्रयोग करना चाहिये, और म कर का वायु को आवरणद्वारा गर्म रखना चाहिये। किन्तु धूवां का बचाव सदैव करना उत्तम है। प्रसूता को अजवाइन का धूनी और कपूर या अन्य औषधी डालकर पकाया हुआ जल पीने को देते हैं। कहीं २ हींग को घोलकर सिर में मलते और उसका फहा कान मे लगाते हैं।

शीत से साधारण व सन्निपातिक खांसी ... उत्पन्न होती है। इनमें सन्निपातिक कष्ट साध्य है और इसमें मृत्यु अधिक होती है। प्रसव के पश्चात निर्बलता तथा थकावट के कारण कपकपी अधिक लगती है जिससे विश्राम करना कठिन हो जाता है। गर्म कपड़ा ओढ़ना और बोतल मे गर्मजल भर कर बगल में रखना चाहिये। कहीं २ गर्म जल व गर्म दूध भी पीने को देते है। परन्तु सौवर मे छूत के भय (अशुद्ध होने) से यथेष्ट वस्त्र न देना महाहानि कारक है।

भोजन-प्रसव के परिश्रम से स्त्रियां शिथिल हो जाती है। अत एव उन्हें एक दो दिन भोजन न देने से कोई हानि नहीं है, वरन जरायु-सकुचन और उसके अनुपयोगी परमाणुओं के निकलने मे सुविधा होती है। दूसरे इन्द्रियों के सिथिल हो जाने से भोजन के पचाने में कठिनता होती है। परन्तु भूख और प्यास लगने पर गाय का गरम किया हुआ दूध पीने को देना चाहिये कहीं २ माता तथा बालक को गर्मी के दिनों मे भी तीन दिन तक भूख प्यास लगने पर खाने पीने को नहीं देते हैं। यह महानिर्दयता और हानि कारक है। तीसरे चौथे दिन से छठवें दिन तक हलका

भोजन, साबूदाना, दूध और जव या धान के लावा का पानी, पुराना चावल का मांड पेज) इत्यादि और मांसाहारियों के लिये मांस रस, मछली का जूस तथा अण्डा देते हैं। शीत देशों में सर्दी के दिनों में ठंडा भोजन व पानी कदापि न देना चाहिये। ठंडे पानी से कफ कुपित होने पर ज्वर खांसी आदि का भय रहता है। किन्तु गर्मी के दिनों में प्यास की अधिकता होने पर पकाया हुआ गुन गुना पानी देना चाहिये। परन्तु यह भी ध्यान रहे कि अधिक भोजन या जल देना हानिकारक है। प्यास की शान्ति के लिये थोड़ा पानी कई बार में देना चाहिये। छठवें दिन के उपरान्त उपरोक्त हलके भोजन के साथ साधारण भोजन पुराना कातिक चावल साठी दिलबकसा, बसुमतिया) अच्छी तरह पकाया हुआ और पुरानी मूंग या अरहर की दाल गाय के दूध या घी अथवा मांस रस के साथ दस बारह दिन तक देना चाहिये। तरकारी में परवल आलू वा गोभी की तरकारी धीमे पकाकर काली मिर्च और नमक के साथ दे सकते है। बारहवे दिन के बाद निम्नलिखित साधारण पुष्ट भोजन (दूध घी, चावल मांस अण्डा इत्यादि) महीना भर तक देना चाहिये। खटाई, तेल और अन्य बादी पदार्थों का उपयोग बहुत कम करना चाहिये। परन्तु शरीर में तेल मलवाना माता तथा बालक दोनों को लाभदायक है।

कहीं २ प्रसूता को तीन चार दिन तक भोजन पानी कुछ नहीं देते। पियास (प्यास) की अधिक तेज़ी हुई तो पकाया हुआ गर्म जल थोड़ा देते हैं। चौथे दिन नीम के जल में (स्नान) स्वच्छ कर हरीरा-हलदी, गुड़, पिपल, सोंठ

आदि औषधियों का काढ़ा दूध के साथ देते हैं आय आचार्यों ने तीन दिन तक भूख लगे तो घी पिलाने की आज्ञा दी है। यदि अकेला घी न पिया जाय तो पीपल पिपरामूल, सोंठ चाव्य और चित्रक आदि औषधियों का चूर्ण पुराना गुड़ और घी के साथ देने को बताया है। इस के पश्चात माम रस के साथ चावल खाने को कहा है। मांस रस का प्रयोग हर जगह नहीं हो सकता, इस लिये बहुत स्थानों में हलदी भात गुड़ और घी के साथ चौथे व छठवें दिन से बारहवें दिन तक देते हैं। फिर मूंग के दाल के साथ चावल व कोदई खिलाते हैं। विरुद्धाहार के कारण अजीर्ण, अतिसार ग्रहणी, खासी ज्वर आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इस लिये मोटे व कड़े अन्न व मास का प्रसूतावस्था में देना हानि कारक है।

कोई २ शिथिलता को दूर करने व शीत के बचाव के लिये शराब और चाह को पिलाते हैं। चाह पिलाने से यद्यपि अधिक हानि नहीं है तथापि नींद और भूख कम लगती है। परन्तु शराब का पीना बिना वैद्य की आज्ञा के बहुत हानि कारक है। इससे उत्तेजना होने के कारण रक्तस्राव अधिक होने का भय रहता है। शराब से भूख और नींद के अतिरिक्त मस्तिष्क, पक्वाशय, यकृत, आदि इन्द्रियों मे विकार उत्पन्न होता है।

प्रसूता स्त्रियों को खाट पर विश्राम करने के पश्चात ही बालक को स्तनो से लगाना चाहिये। घंटे दो घंटे से अधिक देर न होना चाहिये। इससे जरायु सकोचन तथा रक्त स्राव बंद होने के अतिरिक्त स्तनों में दूध के प्रवाह की

उत्पन्न होती है नव प्रसूताओं में तीन दिन तक दूध नहीं होता परन्तु बहु प्रसूताओं मे इनसे जल्दी उत्पन्न होता है। इसलिये जबतक नव प्रसूताओं मे दूध न निकलने लगे तब तक बालक को बार २ व बहुत काल तक स्तनों को पान न करने देना चाहिये पहिले तीन दिन दूध न हो तो गाय या बकरी का दूध पानी मिला और पकाकर देना चाहिये। मा को तीन २ घंटे के बाद दिन और चार २ घंटे के बाद रात मे स्तन पान कराना चाहिये। और एक बार दस बारह मिनट से अधिक देर तक दूध न पिलावे। बार २ और अधिक समय तक पिलाने से माता तथा बालक दोनों के विश्राम में बाधा होती है। और स्तनों के कटने का भय है। लेट कर दूध पिलाना व पिलाते २ मा अथवा बालक का सोजाना रोने पर बालक को बार २ पिलाना इत्यादि अभ्यास डालना अच्छा नहीं। वरन मा को सुगमता से बैठकर बालक को दूध पिलाना चाहिये।

कभी २ बालक मा के स्तनों को पान नहीं करता है। तब मा को चाहिये कि स्तनों को स्वच्छ कर उन्हे बालक के मुख मे हाथो से पकड़ कर डाले और फिर धीरे २ दूध को उसके मुख मे निचोड़े। इस तरह अभ्यास होजाने पर वह आपसे स्तनो को पीने लगेगा। यदि इस पर भी न पीये तो उसकी जिह्वा को देखना चाहिये। कभी २ यह नीचे की ओर मसूड़ों से जुड़ी रहती है। तब वैद्य को बोलवा कर उसे कटवाना चाहिये। अलग होजाने पर बालक स्तन पान करने लगता है। कभी २ स्तनों की भुंडी छोटी और भीतर को दबी रहने पर स्तनों का पान करना कठिन होजाता है, यह

देशी महिलाओं में कम देखने में आता है। परन्तु [illegible] स्त्रियों में यह कमानीदार चोलों के दबाव से बहुधा [illegible] धस जाती है। इन्हें प्रति दिन थोड़ा २ खींचना और कमानी का पहिनना बंद करना चाहिये। लेट कर पिलाने से बालक का यकृत (कलेजा) दबना अथवा उसके मुंह [illegible] स्तन अच्छी तरह नहीं पहुंचता है, इसलिये बालक स्तन पान नहीं करता और रोता है। अतएव बालक को [illegible] विशेष कर बायें करवट लेटाकर दूध न पिलाना चाहिये बालकों का यकृत अन्य अवयवों की अपेक्षा अधिक [illegible] रहता है। इसके बोझ को बालक संभाल नहीं सकता है। कम दूध के होने से भी बालक का पेट नहीं भरता और रोता है। तब मां के दूध के अतिरिक्त गाय व बकरी का दूध बालक को पिलाना चाहिये। किसी २ से बहुत दूध होने के कारण दूध की धार स्तनों से तेजी के साथ निकलती है और बालक का मुख व नाक तक भर जाता है, इससे उसको लग कर खांसी होती है। ऐसी अवस्था में स्तनों को उंगलियों से दबा कर दूध की धार धीरे २ बालक के मुख में देना चाहिये। कभी २ बालक प्यास, नींद, पीड़ा आदि के कारण भी रोता है। तब दूध पिलाने से कोई लाभ नहीं होता, इसलिये बालक के रोने पर उपरोक्त बातों का भी विचार रखना चाहिये।

बालक को दूध पिलाने के बाद स्तनों को स्वच्छ करना चाहिये। यदि दूध जो बाहर बहा हो उसे गर्म जल से धोना चाहिये और चमेली या शुद्ध तिली का तेल अथवा ग्लिसरीन लगाकर कोमल रखना चाहिये। चोली बांधने से स्तनों

को सहारा मिलता है और वे सजीव रहते हैं। कभी २ मलिनता अथवा दबाव व बच्चों के देर तक चूसने, के कारण स्तनों के भोंडी में दरार हो जाती है। तब उनमे पीड़ा होती है। यह ग्लिसरीन, लिस्मारीन तथा कारबोलिक लोशन (कारबोलिक एसिड दो भाग, पानी ९८ भाग) से धोने से अच्छा हो जाता है। स्वच्छ मक्खन भी इसके लिये लाभ दायक है। परन्तु बालक को दूध पिलाने के समय उपरोक्त औषधियों को साफ पानी से धो डालना चाहिये। स्तनों में लगाने के लिये रबर की भोंड़िया मिलती है जिनके द्वारा बालक को दूध भी पिला सकते हैं और दरार की भी रक्षा होती है। इनको स्वच्छता पूर्वक उपयोग करना अति आवश्यक है। प्रत्येक बार दूध पिलाने के पूर्व और पश्चात् इनको गर्म जल में स्वच्छ करना चाहिये। क्योंकि इनमें दूध के परमाणु लगे रहने से सड़ कर दूध को विकारी बना देते हैं, और गंध आने से बालक इन्हें मुख मे नहीं लेता और रोता है।

जब बालक स्तनों को अति कालतक नहीं पीता अथवा बालक दुर्बल होने से स्तनों को यथायोग्य खींच कर आवश्यक दूध को निकाल नहीं सकता है तब वे दूध पूर्ण होजाने से कठोर हो जाते और उनमें गांठ पड़जाती है। भोंडी भीतर को घुस जाती और उनमे सूजन और, दाह तदुपरांत व्रण हो जाता है। इससे माता तथा बालक दोनों को कष्ट होता है। दूध के रुकने से जो ज्वर उत्पन्न होता है उसे क्षीर ज्वर (Milk fever) कहते हैं। इसमें स्तनों को धीरे २ मलना, बालक को आरोग्य स्तन पान कराना, हाथ व यन्त्र द्वारा दूध को निकाल कर बालक को पिलाना अथवा

अधिक दूध हो तो अन्य बालक को भी पिलाना चाहिये। या निचोड़ कर कम कर देना चाहिये। मल प्रेरक औषधि एप्सम अथवा फ्रूट साल्ट (Epsom or Fruit Salt) देने से स्तनो में कोमलता, दूध का कम होना और ज्वर की शान्ति होती है। किन्तु जब व्रण मालुम हो तो उचित औषधि लेप अथवा पुलटिस (टिंचर आइडिन अथवा अलसी की पुलटिस) बांधे अथवा गर्म जल से कपड़ा लगा कर सेके और पकजाने पर औज़ार से निरछापन से चीर लगावे। घाव को प्रति दिन नीम व पारे के धावन से स्वच्छ कर आइडोफार्म (Iodoform) की बुकनी अथवा मरहम की पट्टी लगावे और बालक को दूसरे स्तन से दूध पिलावे। व्रण वाले स्तन का दूध यंत्र द्वारा निकाले जब तक व्रण अच्छा न हो जाय।

दूध-भय, शोक, और दुर्बलता के कारण कम होता है। अतएव स्त्रियों को प्रसन्न चित्त रखना तथा दूध, घृत अथवा मेवों का पकवान, खीर, दलिया, इत्यादि द्रव्य रूप से देना अच्छा है। स्तनो पर अंडी के पत्ते व बीजे की पुल्टिस बांधना लाभदायक है। (Cod-liver oil) मछली का तेल अन्य औषधियों व दूध के साथ खाते व शरीर में मलते हैं। कसेरू, सिघांड़े, विदारीकंद सतावर आदि के चूर्ण की खीर बनाकर खाने से स्तनो में दूध की वृद्धि होती है।

पाश्चिमात्य देशों में सन्तानो को माता के स्तनो से पोषण करने की चाल कुलीन जाति में कम है। वहां स्त्रियां सभ्यता के कारण स्तनो को सुडौल रखना अधिक प्रिय समझती हैं। परन्तु यह सभ्यता अब कहीं २ मिटती जाती है। क्योंकि संतान को योग्य बनाने के लिये माता का ही

स्तन पान करना उत्तम है। भारत माताओं को इस विषय मे धन्य है कि वे अपनी सतानो को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझती है। फिर ऐसी सभ्यता उनमे कदापि नहीं हो सकती। तथापि जब मृतक बालक उत्पन्न होता है, अथवा जब दुर्भाग्य से मरजाता है तब माता को दूध सुखाने की आवश्यकता होती है। स्तनो पर बेलाडोना (Belladonna) का लेप या ग्लिसरिन के साथ पलास्तर लगाने से दूध सूख जाता है। यत्र द्वारा भी खींचते है (Epsom Salt) एप्सम साल्ट डेढ़ तोला दो चार दिन प्रातःकाल खा लेने से दूध कम हो जाता है। उपरोक्त दूध बढ़ाने वाले भोजन न देकर सूखे, रूखे भोजन का उपयोग करना चाहिये।

प्रसव काल में नाल खींचने में अथवा जरायु सकुचन पूर्ण रूप से न होने पर अथवा प्रसूता के जल्दी उठने, बैठने, चलने, फिरने तथा परिश्रम करने से जरायु का कुछ भाग योनि मार्ग से निकल आता है। अथवा उसमें स्थानान्तर सिकुड़न व सिरोड़ पड़ जाती है। तब उसमे पहिले पीड़ा फिर सूजन होती है। इन्हें योनि में स्वच्छता पूर्वक हाथ डाल और स्वच्छ तेल व ग्लिसरिन से मल कर जरायु को ठीक कर देना चाहिये। यदि फिर से हो जाने का भय हो तो उसमे भारी पदार्थ (रुपैया पैसा) की पुट की बना कर स्वच्छ रीत्यानुसार एक दो दिन रखना चाहिये।

कभी जरायु में सकोचन पूर्ण तरह से न होने तथा उस में नाल झिल्ली के टुकड़े रह जाने अथवा शीघ्र उठने, बैठने, इत्यादि कारणो से जरायु के धमनियो का मुख अच्छी तरह बद नहीं होता अथवा जोर पड़ने से फिर खुल जाता है।

सुतराम् प्रसव के पश्चात् ही अथवा कुछ घटे या एक दो दिन बाद योनि से रुधिर की धार अत्यन्त बेग से निकलती है। प्रसव के पश्चात् रक्त श्राव को प्रसवान्तक-रक्त श्राव (Post Partum hœmorrhage) कहते है। और जो रक्त-श्राव कुछ घटे या दिन के पश्चात होताहै उसे प्रसूत कालिक रक्त श्राव (Secondary Post Partum hœmorrhage or puerperal Hæmorrhage) कहते है। इनमें रक्त-श्राव कभी थोड़ा और कभी इतना अधिक निकलता है कि सब कपड़ा तर होकर बिछौना मे नीचे पृथ्वी पर बहने लगता है जिससे मृत्यु हो जाती है। रक्त बद करने के लिये बताये हुये औषधिया एक्सट्रेक्ट अर्गट लिक्युड, लोहासार का अर्क, माजूफल का सत इत्यादि देना चाहिये। चौराई की जड़ चावल के धोवन के साथ देने से भी लाभ होता है। जरायु में स्वच्छ कपड़ा भरना, अथवा लोहासार का अर्क या माजू फल के काढ़े में भिगोकर प्रवेश करना अथवा इन औषधियो को जरायु मे रुई से लगाना तथा इनके जलसे धोना उपयोगी है। सिर को नीचे रखना और कमर को उठाना चाहिये। जरायु सकोचन के लिये उसे उदर के ऊपर से दबाना चाहिये।

प्रसूतावस्था में दुर्बलता, रूधिर के पतले होने और जल्दी उठने बैठने से जरायु की शिरा वा धमनियों द्वारो जमा हुआ रुधिर का टुकड़ा प्रवेस कर पाव के शिरा या धमनियों के रक्त प्रवाह को बद कर देता है। तब पांवों में सोथ उत्पन्न होता है। पांव उठाना, धरना व मोड़ना कठिन हो जाता है। अधिक रक्त जमने व सूजन होने से

पाव का चर्म तनाव के कारण पतला हो झलकने लगता है। प्रसूता का चलना-फिरना फिर दो चार महीने नहीं हो सकता है। ऐसी अवस्था में पांव को कभी मलना न चाहिये। जमा हुआ रुधिर का टुकड़ा हृदय में पहुंच ने से तत्काल मृत्यु होती है। पाव के नीचे से ऊपर तक गर्म पट्टी बांध-कर उसे ऊंचे तकिये पर रखना चाहिये और प्रतिदिन गर्म जल में कपड़ा भिंगाकर सेंकना चाहिये। एप्सम साल्ट अथवा सनाय, हर व सोंठ का काढ़ा मिसरी के साथ प्रतिदिन प्रात: काल मल के स्वच्छ करने तथा रक्त से जल का विकारी भाग निकालने के लिये पीना उपयोगी है। पांव नर्म पड़ने पर उसे तेल लगा कर धीरे२ दबाना रक्त-प्रवाह के स्थापित करने के लिये अच्छा है। परन्तु अधिक काम तक न करे, प्यास के लिये नारंगी, अनार का सेवन व शरबत पीना हितकारी है।

पंचम्-प्रस्ताव।

बाल्यावस्था।

बालक उत्पन्न होतेही मुख, नेत्र आदि को स्वच्छ कर उसके रुलाने का प्रयत्न बहुत कर सब देशों मे किया जाता है। इससे उसके जीवित होने की परीक्षा करते है, थालों का बजाना, बन्दूक का छोड़ना, राख से ज़मीन पर खुला डाल रखना इत्यादि उपाय उस को रुलाने को किये जाते हैं। इनसे बालक चिहुंक कर भरपूर स्वांस लेता और रोता है। तब उसके जीवित उत्पन्न होने में कोई सन्देह नहीं रहता है। आज कल उपरोक्त बातो का करना एक नियम होगया है। आवश्यकता अनावश्यकता का कोई विचार नहीं होता है। परन्तु इनसे सन्तानोत्पत्ति की सूचना सर्वसाधारण को अवश्य मिलजाती है। चमारिन बहुधा बालक के ऊपर की झिल्ली व चिकनाई स्वच्छ करने के लिये उसे गर्मराख में डाल देती हैं। परन्तु राख उसके मुख, नासिका आदि मे जाने से उसे स्वांस लेने मे कष्ट ही नहीं होता वरन कभी २ मृत्यु भी हो जाती है। इसलिये राख का प्रयोग करना उचित नहीं वरन कोमल कपड़े में बालक को लपेट लेने से यह आप ही छूट जाती है। फिर बालक को विधि अनुकूल स्वच्छ करने से उसका शरीर स्वच्छ हो जाता है। अधिक काल तक उसे ज़मीन पर खुला डालने से शीत लगने का भी भय रहता है जिससे सर्दी, खासी आदि रोग होते हैं। बालक की जिह्वा नीचे लगी रहने से वह अनेक प्रयत्न करने पर भी नहीं रोसकता है इसलिये उसकी जिह्वा को देखना चाहिये और जुड़ी हो तो वैद्य को बोलाकर कटवा देना चाहिये।

मुख में उंगली डालकर उसे स्वच्छ कोमल कपड़े से साफ़ करना चाहिये और नेत्रों को कोमल कपड़े से पोछना चाहिये। तत् पश्चात उसकी गुदा और मूत्र द्वार को देखना चाहिये। किसी २ में गुदा द्वार बन्द रहता है। उसे वैद्य से खोलवाना चाहिये। नाल को ऊपर कहे अनुसार सावधानी से

कीट रक्षक स्वच्छता का (Aseptic) अर्थात जिससे घाव में रोगोत्पादक जन्तु प्रवेश न कर सकें—ध्यान रख काटना चाहिये । असावधानी होने से नाभी से रक्त-श्राव होने तथा उसके पकने का भय रहता है । मलिन शस्त्र डोरा आदि के प्रयोग तथा घावपर मलिन पदार्थों के लगाने से (मलिन राख) नाभी के घाव द्वारा एक विशेष अणुजन्तु शरीर में प्रवेश कर धनुस्तम्भ (Tetanas) शरीर का अकड़ना रोग होता है । इस रोग में बच्चों के हाथ पांव बार २ ऐंठते दांत बैठ जाता गला अकड़ जाता और मुट्ठी बंध जाती है । इससे बिरलेही आरोग्य होते हैं । परन्तु योग्य वैद्य से चिकित्सा कराना उचित है । वैद्य के न होने पर पोटास ब्रोमाईड (Pot bromide) पांच २ रत्ती गर्मजल व दूध के साथ दो २ घंटे में पिलाना चाहिये ।

जब प्रसव मे देरी होती अथवा प्रसवावस्था में बालक की छाती, सिर व नाल पर अधिक दबाव पड़ता है तब बालक उत्पन्न होने पर मृतवत (मरेहुए के समान) मालुम पड़ता है । हृदय की धड़कन और नालकी नाड़ी नहीं मिलती स्वांस चलता हुआ नहीं मालूम पड़ता है । शुद्ध रुधिर का संचालन बन्द होजाने से शरीर पीला पड़ जाता है । ऐसी अवस्था में उसे स्वास लेने के लिए उपाय करना चाहिए । गर्म जल में बालक के शरीर को डुबाना और मुख पर ठंडेपानी का छीटा मारना चाहिए । इसे बार २ दस बीस मिनट तक करना चाहिए । इससे ठीक न होतो व्यर्थ उपायों में समय नष्ट न कर कृत्रिम स्वांस क्रिया (Artificial respiration) करना चाहिए । बालक का मुख

खोल, जिह्वा बाहर निकाल और सिरको कुछ सीधा कर हाथों से पसुलियों को सामने बैठकर धीरे २ बार २ दबावे और ढीला करे। अथवा बालक के दोनों हाथों को धीरे२ छाती के सामने से दबाता हुआ ऊपर सिर तक लेजाय और दोनों को सिरपर मिलावे, फिर शीघ्रता के साथ वैसेही अपने स्थान पर (छाती के बग़ल में) लावे। इस प्रकार कई बार शीघ्रता से (एक मिनट में १५, १६ बार) करने से बालक स्वांस लेने लगता है। इस उपाय के करने पर बालक कहींर घंटेभर के बाद पुन: जीवित हुआ है। इसे कुछ समय तक करने पर हृदय में थोड़ी भी धड़कन न मालूम हो तो अधिक समय तक करना व्यर्थ है। पर जब कुछ भी स्वास चलने की चेष्टा मालूम हो तो उसे करते ही जाना चाहिए जब तक बालक स्वांस अच्छी तरह न लेने लगे इसे सावधानी के साथ न करने से बालक के हाथ उखड़ने का भय है।

बालक को शीत के बचाव के लिए उसे शीघ्रता से अग्नि के पास पोछ स्वच्छ कर ऋतु अनुकूल गर्म कपड़ों में लपेट खाट पर मुख खोल कर सुलाना चाहिए। उसकी शारीरिक गर्मी गर्भावस्था में वायुमण्डल की गर्मी से कई गुना अधिक रहती है। अतएव उसके उत्पन्न होनेपर उसकी शारीरक गर्मी एकाएक कम हो जाती है। इसलिए बहुत से बालक अधिक शीत लगने से स्वांस को अच्छी तरह नहीं ले सकते और उनके फुफ्फुस विस्तृत न होने से वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उपरोक्त कारण से बालक को उत्पन्न होते ही गर्म और कोमल कपड़े में लपेट कर रखना तथा अधिक शीत हो तो बोतल

में गर्मपानी भर बगल में रखना, अथवा प्रसूतिगृह की वायु को अग्नि द्वारा गर्म रखना इत्यादि लाभदायक हैं।

बालक कम दिन का उत्पन्न होने पर उसके पालन पोषण में और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता है। कहीं सात मास से कुछ कम दिन का भी बालक जीता देखा गया है। इसलिए किसी भी बालक केजीवन से हताश न होना चाहिए जब तक वह श्वास अच्छी तरह लेता है। वरन योग्य उपायों से वह पूर्णायु तक जी सकता है। ऐसे बालको के लिए शीत व भोजन का प्रबंध और उन्हें उठाने बैठाने में सावधानी रखना चाहिए तब वे जी सकते हैं। बालक के शरीर पर की चिकनाई स्वच्छ करने के लिए हमारे देश में राख की अधिक चाल है। यद्यपि गर्म राख स्वच्छ होती है तथापि यह उसके मुख नाक आदि स्थानों मे भर जाने से अनेक उपद्रव होने का भय है। दूसरे इससे बालक के कोमल चर्म को हानि पहुँचती है। इसलिए स्वच्छ कोमल वस्त्र का ही प्रयोग शरीर को स्वच्छ करने के लिए उत्तम है। कहीं २ नाल कटने के पश्चात बालक के शरीर व सिर में हींग गर्मजल में घोलकर मलते और फिर शरीर से राख रक्त आदि स्वच्छ करने के लिए नीम के गर्म जल में नहलाते है। और फिर उसे अजवाइन की धूनी से अच्छी तरह पानी सूखने तक सेकते हैं। तब उसे मांके पास बगल में सुलाते हैं। अजवाइन की धूनी बारहों तक दिन रात में कई बार प्रतिदिन देते हैं। पश्चिमात्य देशों में बालक के शरीर को स्वच्छ करने के लिए गर्मजल व साबुन का अधिकतर उपयोग करते हैं परन्तु डाक्टर स्टेले ने हिन्दुस्तान में

"पत्नी और माता" नाम की पुस्तक में बालक के शरीर को स्वच्छ करने के लिए गर्म तेल और दूध में स्वच्छ और कोमल कपड़ा भिंगाकर पोछने तथा नहलाने को लिखा है। उपरोक्त राय हमारे पूर्व आर्य आचार्यों की भी है। पानी से शीतका अधिक भय रहता है परन्तु तेल व दूध में नही होता। तेल को स्वच्छ फोहा से थोड़ा २ लगाकर स्वच्छ कोमल कपड़े से पोछना चाहिए। दूधमें आधा जल मिला गर्म कर स्नान कराते हैं। परन्तु बालक के नाल को भिगाना न चाहिए नहीं तो उसके पकने का भय रहता है। स्नान बद्‌गृह और अग्नि के समीप कराना चाहिये इस समय शीतल वायुका बचाव करना अवश्य है। उबटन और तेल लगाकर बालक को स्वच्छ रखना अति उत्तम है। इससे उसके अङ्ग दृढ होते हैं। कहीं इसका प्रयोग बर्षो करते है। परन्तु मध्यप्रदेश में यह बिलकुल नहीं लगाया जाता है। पानी का उपयोग नवजात बालक के स्नान के लिये बारह दिन के पश्चात ऋतुकाल और आवश्यकता के अनुसार करना चाहिये। स्वच्छ रखना तथा स्नान कराना उपयोगी है। परन्तु शीतका बचाव रखना चाहिये। स्नानके पश्चात पानी को वस्त्रसे पोछकर बालक को अग्नि में सेकना तथा गर्म वस्त्र में थोड़ी देर तक लपेट कर रखना चाहिये।

कहीं २ बालक को ६ महीने तक कपड़ा नहीं पहिनाते हैं, यह ठीक नहीं। परन्तु महीना दो महीना कपड़ा (कुर्ता) न पहिनाना योग्य है क्योंकि उसके उतारने पहीनाने में अधिक सावधानी चाहिये नहीं तो बालक के हाथ उखड़ने का भय रहता है पर जब बालक हाथ पांव फेंककर तीसरे

चौथे महीना खेलने लगता है तब उसे भारी कपड़ा उठाने की अपेक्षा शीत के बचाव के लिये कुर्ता का पहिनाना अच्छा है । इससे वह बाहर आंगन में स्वच्छ वायु का सेवन आनंद पूर्वक कर सकता है । बिना कपड़ा पहिनाये बाहर निकालना न चाहिये और भारी कपड़ों से बालक का खेलना नहीं हो सकता । वरन उस में कसजाने से दम घुटने का डर रहता है । हिन्दुस्तान में दस बारह दिन तक बालकों को कपड़े बहुत कम लोग पहिनाते हैं बारहो (नाम करण संस्कार) के पश्चात कपड़े पहिनाने की अधिक चाल है । एक छोटी रजाई अथवा फलालैन के टुकड़े में बालक को लपेट कर लेना चाहिये, बालकों के कपड़े सदैव स्वच्छ और ढीले होने चाहियें । तंग कपड़ो को पहिनने और उतारने में कठिनता होती है और उनसे स्वास लेने व अवयवो की बाढ़ में रुकावट होती है । हाथ पांव दृढ होने के लिये बालक को कपड़ा पहिनाना और ऋतु व समय का विचार कर बाहर आंगन में खाट पर खेलने देना चाहिये दिन रात गोद में लिये रहना हानि कारक है । माता कोई अन्य कार्य नहीं कर सकती और बालक भी प्रसन्न चित्त नहीं रहता । मस्तक के मर्म स्थानों को आघात (चोट) से बचाना चाहिये । उन पर तेलका फोहा रखना लाभदायक हैं । बालकों के मस्तक की हड्डियां आपसमें अच्छी तरह नहीं मिली रहती हैं इस से उन में ऊपर की ओर दो स्थानो पर मस्तिष्क खुला रहता है और ये दो महीनें तक बन्द नहीं होते इस लिये कभी २ सिर और नाक प्रसव की अवस्था में दबाव पड़ने से चपटे हो जाते हैं । सिर को दोनों हाथो से धीरे २ मल कर और नाक

को चुटकी से दबा कर दस बारह दिन तक प्रति दिन उठा ने से सुडौल और अपने आकार पर आजाते हैं बालकों को उठाने अथवा गोदी लेने में सावधानी रखाना चाहिये। जोड़ ढीले होने के कारण टलने का भय रहता है। एक हाथ अथवा गला पकड़ कर कभी नहीं उठाना चाहिये। इस से हाथ के उखड़ने तथा गर्दन की हड्डी के टलने का डर रहता है। गर्दन की हड्डी टलने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

स्त्रियों को कभी २ दो तीन दिन तक दूध नहीं उतरता। इस से बालक के लिये कोई सदेह की बात नही है और न उसे इस समय में दूध की आवश्यकता होती है। क्यो कि बालक के आंतों में एक प्रकार का चिकना पदार्थ रहता है जिस से उसका पोषण दो एक दिन होसकता है। कहीं २ तो माता व बालक को दो तीन दिन तक कुछ भी भोजन नहीं देते और यह ख्याल है कि जब तक उनमें अच्छी तरह भूख न बढ़े (अर्थात् नेखराय न जाय) तब तक उन्हें भोजन देना हानि कारक है। मा के जो दूध इस अवधि में उतरता है वह बहुत थोड़ा और गाढ़ा होता है। इस के पीने से बालक का शरीर पुष्ट नहीं होता वरन यह उस के आंतों का मल निकालने में मलप्रेरक औषधि का काम देता है। अतएव, प्रकृतिभी बालक को एकदो दिन आहार देना उचित नहीं समझती, किन्तु उसके आंतों का मल शुद्ध होने की आवश्यकता दिखाती है। परन्तु दुर्बल अथवा कम दिन के बालक को इस तरह निराहार रखना अच्छा नहीं। मा के दूध न होने पर उसे गाय अथवा बकरी का दूध पानी मिला गर्म कर देना चाहिये। बार २ दूध पिलाने का स्वभाव न

डालना चाहिये; किन्तु नियत समय औ परिमाण में देना लाभदायक है। पहिले कुछ दिन तक दो २ घटे, फिर तीन २ घन्टे दिन में और दो तीन बार रात्रि में पिलाना चाहिये। एवम् ज्यों २ बालक बढ़ता जाय त्यों २ उसके दूध पीने का समय भी बढ़ाता जाय। अर्थात् महीना डेढ़ महीनाके बालक का दो २ ढाई २ घन्टे पर दिन में और तीन बार रात्रि में पिलाना चाहिये। चार महीने के बालक के लिये चार बार दिन में और दो बार रात्रि में पिलाना चाहिये। पांच-छ महिने के बालक को चार बार दिन में पिलाना चाहिये। बालक बहुधा प्रात: काल सूर्य उदय के पूर्व ही उठते हैं। और सन्ध्या के घंटा दो घटा रात्रि व्यतीत होते सो जाते हैं। अत एव इन्हें पांच बजे से दूध पिलाना प्रारंभ करना चाहिये। मध्य रात्रि में दूध पिलाने का समय न नियत करना चाहिये। यद्यपि पहिले नियम का पालन करना कठिन जान पड़ता है। परन्तु अभ्यास पड़ जाने पर बहुत सुगम हो जाता है। और इससे लाभ अधिक होता है। विशेष कर रात्रि में नियत समय का होना बालक तथा मा दोनो के लिये लाभदायक है। ऐसा करने से निद्रा में बाधा कम पड़ती है जो अन्य रोगों का घर है। बार २ दूध पिलाने से बालक की आदत बिगड़ जाती है और अधिक होजाने से अजिर्ण दस्त कफ आदि रोग होते हैं। कभी २ बालक मल मूत्र त्यागने के लिये अथवा मलमूत्र के कारण वस्त्र भीग जाने से शित लगने के कारण भी रोता है। तब उसे मल मूत्र त्याग करवाना तथा भीगें कपड़े बदल और सूखे बिछा कर सोलाने से वह चुप हो जाता है। कभी २ बालक को पानी भी पिलाना चाहिये। पानी

उस के मुख तक ले जानेसे वह आपही उसकी इच्छा करता है। इससे पाचनमें सहायता मिलती है। कभी२ दूध पीने पर क्षय हो जाता है तब तोला, दो तोला चूने का स्वच्छ जल अथवा- दुध जलमेंसोडा (Soda Bicarbonas) मिला कर पिलाना चाहिये। छै महीने के पहिले बालक को दूध के अतिरिक्त कोई पदार्थ अन्न मिठाई आदि न देना चाहिये। क्योंकि बालको का क्लोमरस (पाचनाग्नि Pancreatic Juice) इस समय के पहिले उत्पन्न नहीं होता जिससे कि अन्न पाक (पचता) होता है। परन्तु छ महींने के बाद उसे दूध के साथ थे डा २ अन्न दाल का पानी साबूदाना भात आदि हलका भोजन चटाना चाहिये। साल डेढ़ साल तक दूध अधिक और अन्न थोड़ा२ देना फिर मा का दूध छोड़ कर गाय बकरी के दूध और अन्न पर बालक का पोषण होना चाहिये। दूसरा गर्भ रह जाने पर भी मा का दूध बालक के पीने योग्य नहीं रहता तब उसे गाय बकरी का दूध तथा अन्न उसके अवस्था अनुसार देना चाहिये। मा का दूध बालक के अवस्था अनुसार गाढ़ा और पुष्ट होता जाता है। अतएव उसे उपर का दूध पीलाने में भी उपयुक्त नियम का ध्यान कर दूध को गाढ़ा व पतला बालक के अवस्थानुसार बनाना चाहिये।

बालको के लिये मां का ही दूध सब से श्रेष्ट है। परन्तु इस के अभाव में अर्थात् मां को यथेष्ट दूध उत्पन्न न होने अथवा मां की मृत्यु बालक की छोटी अवस्था में होजाने, अथवा रोग व गर्भावस्था के कारण दूध अयोग्य हो जाने से दाई (धात्री) का दूध पिलाना अच्छा है। पर दाई को आरोग्य तथा स्तन उसके कड़े और दूध से पूर्ण होना चाहिये। अव-

अवस्था तथा जाति भी उस बालक के मां की अवस्था और जाति की होना उत्तम है। यदि दूध पिलाने वाली दाई वर्ष अथवा जाति में मा के बराबरी की न हो तो उसका बालक दूध पीनेवाले बालक की अवस्था का अवश्य होना चाहिये। क्यों कि जैसे पहिले कह चुके हैं कि मा का दूध बालक के अवस्थानुसार पुष्ट और गरिष्ट हो जाता है। अत एव गरिष्ट दूध नव जात बालक को लाभदायक न हो कर अपच और दस्तकारक होता है। दाई को उत्तम और पुष्ट कारी योग्य भोजन देना तथा उसे नियम सहित रहना और स्वच्छता पूर्वक आचारण करना चाहिये। एक दाई का दूध बालक को हितकारी न हो तो दूसरी दाई लगाना चाहिये।

एकाएक मां व दाई का दूध छोड़ाने में बालक को अधिक कठनाई होती है। इसलिये उसे दूध छोड़ने के कई महीने पर्व से ही गाय व बकरी का दूध तथा अन्न खिलाने का थोड़ा २ अभ्यास डालना चाहिये। और स्तनों का दूध पान कराना कम करते जाना चाहिये। जब तक की बालक को दिन रात में एक बार का अभ्यास न होजाय। तब उसे एकाएक बंद करने मे हानि नहीं होती है। दूध (स्तन पान कराना) डढ़ साल के पश्चात् छोड़ना चाहिये।

कभी २ योग्य दाई न मिलने अथवा दाई का भार उठा नसकने के कारण कृत्रिम अहार बालको को देने की आव श्यकता होती है। इस अवस्था मे कृत्रिम आहार जब तक मा के दूध के समान नहो तब तक बालक का पोषण अच्छी तरह नहीं होसकता। अर्थात उस अहार को बालक पचाकर

उस के रससे अपने शरीर का पोषण नहीं कर सकता है। आधुनिक समय में बडे २ विद्वानो का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे अपने २ स्थानो में कृत्रिम आहार गाय के दूध से मां के दूध के समता का बनाने के लिये स्थान २ पर कार्य्यालय स्थापित कर रहे हैं। जहां स्वच्छ और पोषण योग्य दूध सहज में प्राप्त हो सकता है।

हमारे देश मे बालको को अमिश्रित गाय, बकरी व गदही का दूध तथा अन्न खिलाने की अधिक चाल है। परन्तु अन्य देशो मे इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के बने हुए आहार बालको के लिये बाजार में मिलते है। उनमे से कुछ यहां भी मिल सकते है। परन्तु ये प्रत्येक बालकों के लिये हितकारी नहीं हो सकते हैं। क्योंकि हर एक का स्वभाव एकसा नहीं होता और अवस्था के अनुसार बदलता भी जाता है। इसलिये एकही प्रकार का आहार प्रत्येक बालक के लिये हर अवस्था, देश और काल में एक नहीं हो सकता है। किन्तु कुछ न कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। हमारे पूर्व आर्य्य आचार्य्यों ने जो अन्नप्रासन की विधि ६ महीने के पश्चात बताई है वह बहुत ही ठीक है। इसके पहिले बालको को अन्न व गाढ़ा दूध (भैंस आदि का) देना अनुचित है। उनमें प्रकृति और क्लोमरस (Livor and Penereatic Juices) अन्नपाचन शक्ति उत्पन्न नही होती। इससे अन्नका पचाना बालको में कदापि सभव नहीं। इसलिये बालकों को इस अवस्था के पहिले अन्नाहार करने से दस्त, आव, सूखी इत्यादि रोग होते है।

पशुओं का दूध स्वभाविक अवस्था में बालको के लिये हानिकारक है। परीक्षा से देखा गया है कि उनके दूध में मां के दूध से भिन्नता पाई जाती है। परन्तु गाय, बकरी और गदही का दूध बहुत कुछ मा के दूध के समता का होता है। इनमें गदही का दूध सबसे अच्छा और मा के दूध से बहुत कुछ मिलता है। तत् पश्चात गाय और फिर बकरी का दूध अच्छा होता है। नीचे के चक्र से यह बात अच्छी तरह समझ में आजायगी। (१००) सौभाग दूध मे निम्न लिखित पदार्थों के भाग पाये जाते हैं।

नाम दूध	fat मक्खा	Proteid सार वस्तु: Casein पनीर	Proteid सार वस्तु: Albumens &c सफेदी	Milk Sugar शर्करा	Salts लवण	Total solids कुल पदार्थ	Water जल
Human मनुष्य (स्वाग)	२ ९०	२ ४०	० ६७	५ ८७	० १६	१२ ००	८८ ००
Cow's गाय (खड़ा)	३ ५०	३ १८	० ९४	४ ००	० ७०	१३ १२	८३ ८८
Asses गदही	१ ०२	१ ०९	१ ८०	५ ५०	० ४२	८ ८३	९१ १७
Goats बकरी	४ २०	३ ००	० ७०	४ ००	० ५६	१२ ४६	८७ ५४
Mares घोड़ी	२ ५०	२ १९	० ५१	५ ५०	० ५०	११ २०	८८ ८०

उपरोक्त चक्र के देखने से ज्ञात होता है कि गौ के दूध में मा के दूधसे सार और खनिज पदार्थ अधिक है और

शर्करा कम है। किन्तु गदही के दूध मे माँ के दूध से केवल मज्जा ही कम है और दूसरे पदार्थ एक से ही हैं। परन्तु गदही का दूध अधिक मिलना सम्भव नही है। अतएव गाय का ही दूध अधिकतर बालकों के लिये उपयोग करते हैं। इसलिये गाय के दूध को स्वभाव और गुणमें माता के दूध के समान का बनाने के लिये पानी मिलाकर सार और खनिज पदार्थों को कम करना और थोड़ा सक्कर मिलाकर अधिक शर्करा करना चाहिये। स्वाद को भी सोडा डाल कर बदलना आवश्यक है। इनके अतिरिक्त गाय के दूध में और भी बाहरी दोष आजाते है। दूध बेचने वाले योग्य और अयोग्य गाय का कुछ भी विचार नहीं रखते है। रोगी गाय का भी दूध दुहकर बेचलेते है। कई रोग ग्रसित गाय का दूध सेवन करने से मनुष्यों मे कई रोग होता है। मा का दूध स्तनों से निकल कर बालक के मुह में बिना बाहरी वायु के ससर्ग हुए पेट में जाता है। अतएव इसमें अस्वच्छ अथवा रोगोत्पादक जन्तुओ के मेल होने की कोई सभावना नहीं रहती है। परन्तु गाय का दूध दुहने पर वायु और मलिन हाथ, पात्र और जल के प्रयोग से अनेक प्रकार के अणुजन्तु दूध में मिल जाते हैं और उसे बिकारी कर देते है। इसलिये बाजार का दूध जब तक अच्छी तरह से गर्म न किया जाय तब तक खाने योग्य नहीं होता है।

एक महीने के बालक के लिये आध पाव गाय के स्वच्छ दूध में दूना अर्थात पावभर स्वच्छ पानी तोला सवा तोला मक्खन और डेढ़ तोला दूध की शक्कर किसी औषधालय से मंगाकर धीरे २ अच्छी तरह एकमय होने

नमक मिलाना चाहिये। इसे फिर उबालकर छटांक २ भर की स्वच्छ शीशियों में भरकर रखले। अथवा उसे अच्छी तरह बन्दकर स्वच्छ स्थान में रखदे। छटांक २ भर स्वच्छ पात्र में निकाल और थोड़ा गर्मकर शीशी वा मूती से धीरे २ बालक को दो २ अढ़ाई २ घटे पर पिलावे। दूध के पिलाने के लिये अनेक प्रकारकी शीशियां आधी छटांक, छटांक, आधपाव, पावभर के माप व तौल की बनी बनाई मिलती है। जिनसे बालक को दूध सरलता से पिला सकते है। ये गावदुम आकार की होती है। इनके एक सिरपर गलादार टोंम होती है जिससे रबर की मुंडी लगाने से बालक उसे मा के स्तनों के समान पीने लगता है। परन्तु इन्हे दूध भरने के पूर्व और पिलाने के पश्चात गर्मजल से अच्छी तरह स्वच्छ करना अत्यावश्यक है। कोई २ इन्हें धोकर बोरेसिक एसिड (Boracic acid) के धावन में डाल स्वच्छ स्थान मे रखते हैं। और काम में लाने के पहिले गर्म जल से धो दूध भरते है।

बालक को गोद में लेकर दूध पिलाना चाहिये। शीशी को थोड़ा टेढ़ा कर रखना चाहिये जिससे दूध बालक के मुख में मुंडी दबाने ही चला जाय। एक समय का जूठा बचा दूध दूसरे समय फिर बालक को न पिलाना चाहिये। किन्तु दूसरे शीशी या पात्र का स्वच्छ दूध लेकर पिलाना उत्तम है। दूध पिलाने का नियम भी मा के स्तन पान कराने के नियम के समान ही होना चाहिये। परन्तु चार पांच महीने के बालक को शीशी से दूध न पीलाकर कटोरा व गिलास से पिला सकते हैं।

ज्यों २ बालक की अवस्था बढ़ती जाय त्यो २ पानी

का भाग कम और मक्खन और शर्करा का भाग अधिक करता जाय। अर्थात् तीन महीने के बालक के लिये पानी और दूध का बराबर भाग होना चाहिये और फिर चार महीने के ऊपर वाले बालक को पानी का भाग कम और दूध का भाग अधिक होना चाहिये। यहां तक कि छठवें महीने में भालक को अमिश्रित दूध केवल थोड़ी शक्कर मिला कर देना चाहिये। चार महीने के बालक के लिये आधसेर दूध में आधसेर पानी पौनछटांक मक्खन और दो तोला दूध की शक्कर मिलाना चाहिये। छः महीने के ऊपर वाले बालक को दूध के साथ साबूदाना, भात तथा दाल का पानी व मांस रस चटाना व पिलाना चाहिये। इसी प्राकार साल डेढ़ साल तक, बालक को दूध का प्रयोग अधिक और अन्न का कम करना चाहिये तदुपरान्त अन्न और दूध का बराबर उपयोग कर सकते है। कोई २ नव-जात बालक को दूध के बदले स्वच्छ और ताजा मट्ठा में जल, मक्खन, और शक्कर उपरोक्त नियमानुसार मिला व गर्म कर देते हैं, और कोई२ चार महीने के बालक को जल के स्थान पर दूध मे जव का जल (भून्ना हुआ जव जल में भिंगा व छान कर) मिला कर देते हैं। कभी २ चने का जल व सोडा भी दूध में मिलाते है। यदि उपरोक्त रीत्यानुसार दूध बालक को यथोचित लाभदायक न हो तो उसमें थोड़ा बहुत हेर फेर करने से योग्य हो सकता है। परन्तु नियत समय और तोल का विशेष ध्यान देना चाहिये। क्योंकि बार २ जल्दी २ अथवा एक समय अधिक और एक समय थोड़ा देना हानिकारकहै। इससे बालक को कय

और दस्त होते है।

दूध अयोग्य होने से बालक का शरीर दुर्बल होता है। इसके पतला होने से बालक को बार २ भूख लगती है, और गाढ़ा अर्थात् इसमें अधिक मक्खन होने से कय अथवा बार २ हरा दस्त और खट्टी डेकारें आती हैं। अधिक पिलाने से अपच दस्त होते हैं। अधिक मीठा (शक्कर) होने से हरे पतले और छुट्टे दस्त होते हैं। और इसमें मक्खन कम होने से मल बध जाता और पेट में पीड़ा होती है। उपरोक्त उपद्रव के होने पर दूध में बताये अनुसार हेर फेर करना चाहिये। चूने का स्वच्छ और निर्मल जल अथवा सोड़ा (Soda Bicarb) दस्त और अपच के लिये दूध के साथ देना लाभदायक है। बालक की बाढ़ पहिले अधिक शीघ्रता से होती है। यहां तक कि छः महीने में वह दूना तौल में हो जाता है। उसकी पेशियां और हड्डियां सब धीरे २ दृढ़ और बलवान होती हैं। चौथे महीने में बालक हाथ पाव फेंककर खेलने, छठवें महीने में पेट के बल चलने व खसकने आठवें दसवें महीने बैठने और हाथ पांव के बल चलने और साल डेढ साल के उपरान्त खड़ा हो कर चलने लगता है। इस अवधि के पूर्व बालक को बैठाना चलाना आदि हानिकारक है। उसकी हड्डियां दृढ़ न होने से मुड़ जाती हैं और अनेक उपद्रव उत्पन्न होते है। देर लगे तो समझना चाहिये कि बालक का भोजन योग्य नही है। तथा उसका पाचन ठीक २ नहीं होता है। तब उसका उचित उपाय करना चाहिये।

जिस प्रकार की बालक को भोजन देने में नियम की

आवश्यकता है उसी प्रकार उसके मलमूत्र के त्याग तथा सोने का भी नियम होना चाहिये। मल त्याग कराने के लिये सवेरे खाट से उठते ही और संध्या को सोने के पूर्व ५-६ बजे बालक को पैरों पर बैठाके मल त्याग कराने से उसे दो चार दिन मे अभ्यास हो जाता है। इसी तरह मूत्र त्याग कराने के लिये भी सोने के पहिले और बाद त्याग कराना और रातमे एक बार बीच में उठाकर त्याग कराना चाहिये। अभ्यास होजाने से वह नियत समय पर पैरों पर बैठाने से ही मल मूत्र त्याग करने लगता है। और जब कभी उसे बीच मे आवश्यकता होती है तो वह रोता है। तब वह पाव पर बैठाने से चुप हो जाता और मलमूत्र त्याग करता है। यद्यपि नवजात बालकों में मलमूत्र त्याग का नियम उठाने बैठाने में कठिनता के कारण न हो सके तो दो तीन मास के बालको को इसका अभ्यास अवश्य कराना चाहिये। इस से न कपडे ही खराब होते है और न किसी कार्य मे बाधा पड़ती है। बालक समय होते ही मल मूत्र त्याग कराने की चेष्टा करने लगता है। तब उसे शीघ्र पांवो पर बैठाना चाहिये। रोग की अवस्था मे भी जहां तक होसके इस नियम का पालन करना अच्छा है। मलमूत्र त्याग हो अथवा न हो पर नियम भग होने से अभ्यास छूट जाने पर फिर कठिनता होती है। सोनेके लिये छोटे बालकों को दो तीन बार और बड़ो को एक व दो बार दिन में अभ्यास कराना चाहिये। परन्तु सुबह और सध्या को बालको को न सोने देना चाहिये; विशेष कर शाम को सोने से रात्रि मे नींद कम आती है। यद्यपि बालको को नीद अधिक

आती है तथापि अब उन्हें खेलने कूदने का समय नहीं मिलता तो उनके शरीर में थकावट न आने से नींद कम आती है। इस लिये प्रातः और संध्या समय बालकों को जगाना, बाहर ले जाकर स्वच्छ वायु का सेवन कराना और उन्हें खेल कूद में लगाना उत्तम है।

बालकों का मन एक स्वच्छ दर्पण के समान रहता है। इस लिये उस पर जैसा प्रतिबिम्ब पड़ता है वैसा ही उस पर प्रभाव होता है। माता पिता आदि के आचरणों को जैसा देखता है उसे वैसा ही असर होता है। बुरे भले का उसे विचार नहीं होता। इस लिये बुरे भले दृश्य जैसा उसने देखा वैसा ही वह अनुकरण करता है। डराने से डर जाता और बिरता के दृश्य से बलवान तथा निडर होता है। इस लिये बालकों को सुलाने तथा चुप कराने के लिये किसी विशेष जीव व मनुष्य का नाम लेकर डराना व उन्हें भय भीत करना अनुचित है। इससे उनके मस्तिष्क व स्नायु तन्तु, धक्का पड़ने से, कमज़ोर हो जाते हैं। अत एव उत्तम सन्तान बनाने के लिये उत्तम आचरण व वीरता के दृश्य देखाना लाभदायक है।

बालकों को मादक पदार्थों, अफीम शराब आदि, से हानि होती है अत एव, इनका सेवन भूल कर भी बिना वैद्य की आज्ञा न कराना चाहिये। बहुत स्त्रियां गृह-कार्य करने में सुविधा होने के लिये बालकों को अफीम दिया करती हैं। बालक सोता रहता है और आप कामों में लगी रहतीं अथवा स्वतन्त्रता से गप मारा करती हैं। कोई २ सरदी का बहाना कर इसका प्रयोग करती हैं। परन्तु इसके लाभ

व हानि की तुलना की जाय तो हानि अधिक दृष्ट पड़ती है। क्षुधा मारीजाती, मल बंध जाता और कभी २ दो २ तीन २ दिन तक नहीं उतरता है। शरीर सूखा, मज्जा रहित, ढीला और दुर्बल दीखता है। कितने ही बालक तो अधिक मात्रा होजाने से सदैव के लिये सोते ही रह गये हैं। नियम सहित समय पर बालक को भोजन, मलमूत्र त्याग, तथा सोने का प्रबंध करने से अफीम की कोई आवश्यकता नहीं है। और घर के कामों में बाधा भी नहीं पड़ सकती है।

बहुतेरे माता पिता बालकों को प्रेमवश शराब अथवा अन्य मादक पदार्थों का अभ्यास कराते हैं। आप जब पीने लगते हैं तब बालकों को भी थोड़ा देते हैं। इनसे कोई लाभ नहीं है वरन हानि ही अधिक है। शराब तम्बाकू आदि पीने में कड़ुआ लगता और खासी आती है तब भी बालक बड़ों की देखा देखी से पीते हैं। शराब से यकृत बढ़ जाता और मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो कर बुद्धि की हानि होती है। तम्बाकू से हृदय में धड़कन उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त इनमें अनेक दोष हैं जिनका वर्णन स्थाना-भाव से नहीं कर सकते हैं। अत एव बालकों को इनसे सदैव दूर रखना चाहिये।

बालको को बाल्यावस्था में भी अनेक रोग होते हैं। छूत वाले रोगों के अतिरिक्त अयोग्य तथा अपरिमित भोजन के कारण भी दस्त, कय, अजीर्ण आदि रोग होते हैं। ऊपरी दूध पीनेवाले बालकों को भोजन का योग्य प्रबंध करने तथा उसमें कभी २ हेर फेर दो तीन महीने में करते रहने से इनके होने का कम भय रहता है। छूतवाले

रोगो से बालक को छूत लगने से बचाना, अलग स्वच्छता पूर्वक रखना, टीका लगवाना आदि उपाय बचाव के लिये करना उचित है। और रोग हो जाने पर उनका उपाय योग्य वैद्य से कराना चाहिये। दस्त, कय व अजीर्ण के लिये मात्रा के अनुसार अंडी का तेल (चार आने भर) दूध के साथ पिलाना लाभदायक है। तत पश्चात सोडा चूने का निर्मल जल (बहुत दिन न देना चाहिये) केलोमिल अथवा हाइडराज कम क्रीटा (Calomel or hydrarg cum creta) एक रत्ती, चार रत्ती सोडा के साथ चार पुड़िया बनाकर दिन में दो तीन पुड़िया दूध व पानी के साथ थोड़ा मिसरी मिलाकर देना गुण कारी है। चौहट्टी (चौभरिया) का प्रयोग भी बालक के लिये अच्छा है। इसमें ककड़ासिंघी, बशलोचन, अतीस और पीपर सम भाग में लिया जाता है, कूट छान कर रत्ती दो रत्ती की पुड़िया शहद व मा के दूध के साथ पिलाते हैं। आंख आने पर बच्चों को अलग अंधेरी परन्तु स्वच्छ कोठरी में रखना तथा छूत से औरों को बचाना चाहिये। प्रतिदिन दोनों काल बोरेसिक के धावन से (एक छटांक स्वच्छ जलमे दस बारह रत्ती दवा) आखों को स्वच्छ करना चाहिये। अधिक पीड़ा हो तो अरजेन्टाई नाईट्रास का धावन (Argenti Nitras) (दो रत्ती औषधी आधी छटांक जल में) औषधालय से मंगाकर एक दो बूंद आंख में टपकावे और उस पर स्वच्छ कपड़े की पट्टी जब तक अच्छी न हो बाधकर रक्खे। फिटकरी का जल भी आंखो के लिये लाभ दायक है। कभी २ बालकों को थोड़े ही कारण से मूर्छा व ऐंठन हाथपांव में आजाती हैं इसमें पेट

को स्वच्छ कर योग्य भोजन तथा पोटास ब्रोमाइड (Pot Bromide) एक दो रत्ती जल व शरबत के साथ दो घंटे पर देना चाहिये ।

अन्य अवस्था के अतिरिक्त बालकों को छठवें आठवें महीने से दांत निकलते समय बहुत कष्ट होता है। किसी को कय दस्त किसी को ज्वर और किसी को आख आती है । इन सब को उपरोक्त रीत्यानुसार चिकित्सा करना चाहिये । मसूढ़े अधिक सूजे हो और दांत न निकलते हों तो उन्हे चिराना चाहिये । बालको के दात निकलने का समय इस प्रकार है ।

दो सामने के काटने वाले दांत नीचे के जबड़ा में ६ से ९ महीना
चार सामने के काटने वाले दांत ऊपर के जबड़ा में ८ से १० महीना

दो सामने वाले के बगल में काटने वाले नीचे के जबड़ा के और चार प्राथमिक डाढ़ दो ऊपर और दो नीचे जबड़ा में	१५ से २१ महीना
कांटने वाले के बगल में चार छेदने वाले दात दो प्रत्येक जबड़े में	२६ से २० महीना
द्वितीय पिछले चार डाढ़ दो प्रत्येक जबड़ा में	२० से २४

(ग्रे ज शारीरक)

उपरोक्त दूध के दांत कहाते हैं। प्रत्येक जबड़ा में दस २ रहते हैं । ये छ महीने के ऊपर निकलने लगते और डेढ़ साल में सब निकल आते हैं । ये छटवें साल से टूटने लगते हैं और इनके स्थान पर दूसरे पक्के दात जो वृद्धावस्था तक रहते हैं निकलते हैं पक्के दांत १७ से २१ वर्ष की अवस्था में पूरे होते हैं । तब इन की संख्या प्रत्येक जबड़ो में १६ और

सब ३२ होते हैं। दांत निकलने के पूर्व बच्चों को अन्न न देना चाहिये।

इति

इस लेख में सुश्रुत, बृहन्निघंटुरत्नाकर, डा: सेम्युएल माल की मिडवाईफरी, डा० अलबट साहब की पत्नी पुस्तक, डा० स्टेले साहेब की भारत में पत्नी और माता नामी पुस्तक, स्टेकपोल साहेब की स्त्रियों को उपदेश नामी पुस्तक तथा अन्य ग्रंथ की सहायता लीगई है।